पथचिह्न

शान्तिप्रिय द्विवेदी

पथचिह्न

शान्तिप्रिय द्विवेदी

माध्यमिक निबन्ध-माला

[माध्यमिक कक्षाओं के लिए निबन्ध-संग्रह]

लेखक

ब्रजभूषण शर्मा एम० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथमावृत्ति] १९५० [मूल्य ३)

प्रकाशक
के. मित्रा,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड,
प्रयाग ।

मुद्रक
श्री अमलकुमार वसु,
इंडियन प्रेस, लिमिटे-
बनारस ब्रांच

प्राक्कथन

यह निबंधमाला उत्तर माध्यमिक शिक्षा पानेवाले छात्रों के लिए लिखी गई है जो इस प्रान्त के तथा अन्य प्रान्तों के हाईस्कूल, इंटरमीडिएट के परीक्षार्थियों तथा विशारद, विदुषी आदि परीक्षाओं में बैठने वाले बालक-बालिकाओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

रचना की योग्यता अन्य कलाओं की भाँति बहुत कुछ नैसर्गिक देन पर निर्भर है। फिर भी भाषा और विषय वस्तु दोनों सम्बंध रखने वाली बहुत सी वस्तुएँ हैं, जो बालक सीख सकते हैं और जिनका सिखाना आवश्यक है। निबन्धमाला की भूमिका में शब्द तथा वाक्य रचना, शब्द चयन, वाक्य-विन्यास, विरामादि चिह्नों के प्रयोग, अनुच्छेद आदि के विषय में आवश्यक बातें बतलाई गई हैं। विद्यार्थियों को उससे अवश्य सहायता मिलेगी। एक बात इस सम्बन्ध में और आवश्यक है। वह यह कि सामान्य रूप से हिन्दी के पठन-पाठन के सम्बंध में और विशेष रूप से हिन्दी लिखने के विषय में नव युवक अपना दृष्टिकोण बदलें। परीक्षक अथवा शिक्षक के रूप में जिन व्यक्तियों ने हिन्दी की लिखाई देखी है, वे सभी लिखने की ओर बालकों की उपेक्षा देखकर बड़े हताश से हो जाते हैं। क्या अक्षरों की आकृति में, क्या शब्द अथवा वाक्य रचना में, क्या विरामादि चिह्नों के प्रयोग में क्या निबंध को अनुच्छेदों में विभक्त करने में और क्या व्याकरण के नियम पालन में प्रत्येक स्थान पर बड़ी सकरुण उपेक्षा दिखाई देती है। अत: पहली आवश्यकता है कि बालक अपनी राष्ट्रभाषा का उचित सम्मान करना सीखें। देश प्रेम के साथ देश भाषा का प्रेम स्वयं सिद्धि रूप में आना चाहिए।

यदि विद्यार्थी यथावश्यक मनोयोग के साथ भूमिका पढ़ डालेंगे, तो उनकी प्रारम्भिक कठिनाइयाँ दूर हो जायेंगी। अपनी रचना लिखते समय विद्यार्थियों को चाहिए कि विषय वस्तु का सग्रह स्वयं करें और अपनी

स्वतंत्र रूपरेखा बनाएँ । श्यामपट्ट पर शिक्षक की दी हुई रूपरेखा बालकों को बहुत उपयोगी नहीं हो सकती इसी लिए इस पुस्तक में बहुत सी रूप रेखाएँ नहीं दी गईं । आदर्श रूप में कुछ रूप रेखाएँ दे दी गईं है, जिनके अनुकरण पर अपने अपने विषयों की रूप रेखाएँ बालक स्वयं बनावें ।

निबंधों के विषय बालकों के वातावरण से सम्बन्ध रखनेवाले सभी विषयों से लिए गये हैं । शिक्षोपयोगी तथा परीक्षोपयोगी सभी सामग्री का इस में समावेश है । प्रकृति, मनोरंजन, नारी, सामयिक विषय, विज्ञान,साहित्य कोई भी विषय उपेक्षित नहीं । अन्य उपयोगी सामग्री, भाँति-भाँति की चिट्ठीपत्री, धन्यवाद, संवेदना, मानपत्र, सम्पादक को विवरण आदि के भी आदर्श दिये गये हैं ।

अतः आशा है कि यह पुस्तक निबंधरचना के प्रायः सभी अंगों को सीखने के लिए पर्याप्त होगी । पुस्तक उपयोगिता बढ़ाने के लिए इसमें अन्य लब्ध प्रतिष्ठित मित्रों तथा अपने छात्रों के लेख भी 'संयोजित' कर के दे दिये गये है, जिससे शैली वैचित्र्य के कारण बालकों को अपनी शैली सुस्थिर करने में सुविधा हो ।

अन्त में अनेक ज्ञात तथा अज्ञात विद्वानों के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी रचनाओं से मुझे इस पुस्तक के प्रस्तुत करने में सहायता मिली है ।

माध्यमिक राज-विद्यालय,

प्रयाग ।

—ब्रजभूषण शर्मा

विषय-सूची

विषय पृष्ठ

भूमिका

यों तो कवित्व की भाँति रचना तथा निबन्ध की योग्यता भी विधाता की देन है, फिर भी उससे सम्बन्ध रखनेवाली साधारण बातें सीखी और सिखाई जा सकती हैं और अधिकांश बिना सीखे आ भी नहीं सकतीं। मोटे रूप से निबन्ध के दो भाग किये जा सकते हैं—भाषा और भाव। भाषा के अन्तर्गत शब्दों और वाक्यों की स्वरूप-रचना तथा विरामादि चिह्नों का प्रयोग प्रभृति कुछ बातें हैं। भाषा एक प्रकार की कला है जो अन्य कलाओं की भाँति अभ्यास से आती है; परन्तु उसके लिए कुछ जानकारी भी अपेक्षित होती है। जहाँ तक हिन्दी भाषा का सम्बन्ध है, शब्दों की बनावट, सन्धि, समास, उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति, लिङ्ग वचन आदि के नियम एवं अन्य भाषाओं की भाँति एक ही शब्द के विविध अर्थ तथा समान प्रतीत होनेवाले शब्दों के अर्थ का अन्तर बालकों को जानना और उनका अभ्यास होना नितान्त आवश्यक होगा। आजकल हिन्दी की शुद्धता की ओर कुछ उपेक्षा सी हो रही है। समाचार पत्रों में अँगरेजी के धड़ाधड़ अनुवाद होने के कारण हिन्दी का स्वरूप विकृत-सा होता जाता है। अब अहिन्दी प्रान्तों में भी हिन्दी की पढ़ाई प्रारम्भ हो रही है, अतः यह और भी आवश्यक हो गया है कि हिन्दी भाषा के स्वरूप की मोटी मोटी विशेषताएँ समझ ली जायँ जिससे साधारण भूलें न हों। स्वयं हिन्दी के विद्यार्थियों को भी, अपने पथ-प्रदर्शन के लिए, इन बातों को जानना आवश्यक है। साथ ही उनको यह समझने की भी आवश्यकता है कि मातृ-भाषा होने पर भी बिना अध्ययन और अभ्यास के वे भाषा का यथोचित शुद्ध प्रयोग नहीं कर सकते। कारण यह है कि शब्दों का लिखित और मान्य रूप निर्दिष्ट होता है; वाक्यों की बनावट और लिंग, वचन आदि के नियमों का मानदण्ड भी सर्व स्वीकृत है और भिन्न-भिन्न प्रान्तों की बोलियों से इनमें अन्तर हो सकता है अथवा उनसे नितान्त भिन्नता भी सम्भव है। अतः यदि हम उसके ठीक रूप को नहीं समझेंगे तो हमारी भाषा में प्रान्तीयता की भूलें होंगी और हमारी रचना अशिष्ट समझी जायगी।

यह तो भाषा के सीखने की बात हुई; परन्तु भाव का महत्त्व भाषा से भी अधिक है; क्योंकि भाषा तो विषय-वस्तु के वर्णन करने का साधन मात्र है। बिना भाव के भाषा का क्या मूल्य! अतः हमको यह सीखना पड़ेगा कि अपने विषय को किस प्रकार प्रकट करें कि वह अन्य लोगों के लिए सर्वथा स्पष्ट हो जाय। भावों का विश्लेषण, क्रमबद्धता, प्रवाह आदि बातें भाव-प्रकाशन के सम्बन्ध की हैं और उनके कुछ नियम भी निर्धारित किये जा सकते हैं। भूमिका के इन पृष्ठों में भाषा तथा भाव की इन्हीं विशेषताओं का कुछ वर्णन किया जायगा जिससे विद्यार्थियों को निबन्ध-रचना में सहायता मिले।

भाषा-शुद्धि

शब्दशुद्धि और शब्दों की बनावट—यों तो अन्य भाषाओं की अपेक्षा हिन्दी भाषा और नागरी लिपि अधिक वैज्ञानिक है और शब्दों की ध्वनि तथा आकृति में विशेष अन्तर नहीं है फिर भी ऐसे अनेक शब्द हैं जिनकी आकृति बिना जाने लिखने में कठिनाई होती है और अच्छे अच्छे लेखकों से भी भूलें हो जाती हैं। इनकी ओर अब ध्यान दिया जाता है।

अनुस्वार—इसमें दो प्रकार की भूलें होती हैं; (१) अनुस्वार का बिन्दु उस अक्षर के ऊपर लगता है जिसके बाद उसका उच्चारण होता है। जैसे प्रभंजन में अनुस्वार का उच्चारण भ और ज के बीच में होता है; परन्तु वह लिखा जाता है भ के ऊपर। जो विद्यार्थी इस बात को नहीं जानते वे इसको परवर्ती अक्षर पर लिख देते हैं जिससे शब्द अशुद्ध हो जाता है। नीचे लिखे सानुस्वार शब्द शुद्ध हैं—

चंपा मंजन, खंजन, लंदन, लंका, गंगा आदि।

(२ यदि हम अनुस्वार से काम न लें तो वर्ग का पञ्चम अक्षर ही मिलाना चाहिए। सभी अक्षरों में न् मिलाने की प्रथा अशुद्ध है। उपर्युक्त शब्द दूसरे रूप में इस प्रकार लिखे जायँगे—

चम्पा, मञ्जन, खञ्जन, लन्दन, लङ्का, गङ्गा।

सम्वाद, सम्वत्सर अशुद्ध प्रयोग हैं।

यदि अनुस्वार के परे य र ल व श ष स ह में से कोई अक्षर हो तो अनुस्वार के रूप में कोई परिवर्तन नहीं होता। जैसे संयम, संरक्षक, संलग्न, स्वयंवर, संस्कृत शब्द शुद्ध हैं। इनमें अर्ध न् या म् का प्रयोग नहीं हो सकता।

कुछ विद्यार्थी अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु (ँ) के अन्तर को नहीं समझते। हँसना, फँसना आदि में चन्द्रबिन्दु ही लगेगा, अनुस्वार नहीं; हाँ, कुछ गुरु वर्ण ऐसे हैं जिनका उच्चारण चन्द्रबिन्दु का होने पर भी उन पर अनुस्वार लगाने की प्रथा है—जैसे, में, हैं आदि; परन्तु काँव-काँव, चाँदनी, फाँदना आदि में चन्द्रबिन्दु ही आवश्यक है। यह बात अभ्यास से ही सीखी जायगी।

रेफ, रकार और ऋकार—रेफ हलन्त र है और रकार सस्वर र है। ऋ एक स्वर है परन्तु बहुत से विद्यार्थी इनका प्रयोग अयथा करते हैं। रेफ जिन दो वर्णों के बीच में उच्चरित होता है उनमें से परवर्ती वर्ण के ऊपर स्थान पाता है। जैसे असमर्थ में रेफ का उच्चारण म के पश्चात् है परन्तु उसको स्थान मिला है थ के मस्तक पर। इस प्रकार के कुछ शब्दों के शुद्ध रूप ये हैं—

धर्म, कर्म, वर्म, चर्म, गर्दभ, कर्तव्य, अभ्यर्थना, निवारणार्थ;

सस्वर र जिस अर्ध व्यंजन के बाद आता है उसके नीचे लगता है; जैसे ग्राम, विश्राम; इसमें ध्यान देने की बात यह है कि र पूर्ण होते हुए भी उसका रूप बहुत छोटा है और इसके पहले का व्यञ्जन अपने पूरे रूप में लिखा जाता है। ऋ का उच्चारण प्रायः हम लोग भूल गये हैं, अतः रि और ऋ के प्रयोग में बहुधा भूलें हो जाती हैं और असाधारण बालक तो प्रायः र और ऋ में भी प्रायः भूलें कर जाते हैं। कुछ शब्दों के शुद्ध रूप यहाँ दिये जाते हैं—

कृपि, दृश्य, तृषा, तृतीय, ऋषि, ऋतु, व्रज, दृष्टि, प्रथा, पृथा (अर्जुन की माता का नाम), गृह (घर); ग्रह (शनि, सूर्य आदि), सृष्टि वृक्ष, समृद्ध, त्रिकाल, त्रिदोष, तृतीय, त्रिगुण आदि।

श, ष, स—संयुक्ताक्षरों में तो इनके प्रयोग का नियम दिया जा सकता है, परन्तु अन्यत्र अभ्यास से ही इनका प्रयोग सीखना चाहिए। ट ठ के साथ मूर्धन्य ष ही मिलता है। जैसे, भ्रष्ट कनिष्ठ।

च, छ अथवा श में तालव्यश होता है। जैसे, निश्चय, निश्छल, निश्शेष। स का संयोग त, थ, व और स के साथ होता है। जैसे, निस्तेज, निस्सन्देह, समस्त, स्थान स्थापक, स्वयं।

अन्य शब्द जिनमें प्रायः श, ष, स के प्रयोग में भूल होती है—विशेष, सुषुप्ति, निषिद्ध, विभीषण, अभिषेक, भूषण, सन्तोष, आषाढ़, पुरुष, शासक, संशोधन आदि।

न, ण—ष्, ऋ और र के बाद स्वरयुक्त न हो या दोनों के बीच स्वर, कवर्ग, पवर्ग, य, व, ह में से एक या कई हों तो ण हो जाता है। जैसे चरण, उत्तरायण, परिणाम, प्रणाम, परिणय, मिश्रण, रक्षण, भक्षण आदि। अन्य स्थानों में न ही रहेगा। जैसे—नयन, सम्मान, प्रकाशन, फाल्गुन, मध्याह्न। मार्जन शब्द में र के बीच ज आ जाने से ण नहीं हुआ।

छ, क्ष—क्+ष् के योग से क्ष बनता है। छ पृथक् वर्ण है। कुछ प्रचलित शब्दों के शुद्ध रूप दिये जाते हैं—छात्र, स्वच्छ, अक्ष, पक्ष, छत्र, क्षेत्र, इच्छा, तुच्छ, समक्ष, क्षमा, क्षोभ, छिद्र, नक्षत्र, क्षिति, क्षुधा।

ब और व—इस सम्बन्ध में कोई नियम नहीं दिया जा सकता। प्रचलित शब्दों के शुद्ध रूप दिये जाते हैं। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे लिपि की शुद्धता का ध्यान रक्खें। संकेत छोटा होने से उच्चारण के महत्त्व में कमी नहीं आती। इसलिए उनको ब और व का अन्तर समझकर लिखना चाहिए।

बल, वश, संबंध, बहिष्कार, बाहु, बुद्धि, ब्राह्मण, वैश्य, देवी, विशाल, वेला, बीज, बुभुक्षा, ब्रह्म, व्यंजन, वर्ष, विशेष, बैल, व्यवहार, वृक्ष, वैद्य, वैभव, वातायन, बलीवर्द, विश्वास।

संयुक्ताक्षर संयुक्ताक्षरों के स्वरूपों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। हम प्रतिष्ठित प्रथा को छोड़कर मनमाने ढंग से उनको नहीं मिला सकते। पाईवाले अक्षरों की पाई संयुक्त होने के पहले गिर जाती है; अन्य अक्षर आधे रह जाते हैं र के साथ संयोग कुछ विचित्र रूप से होता है जिसका वर्णन हो चुका है। इस सम्बन्ध में निम्न संयुक्ताक्षर ध्यान देने योग्य हैं—त्+र=त्र, द्+य=द्य, क्+ष=क्ष, ह्+न=ह्न, क+व=क्व, त्+न के योग में

विशेष सावधानी रखनी रखनी चाहिए उसका रूप 'त्र' ही ठीक होगा। 'त्न' में 'ल' का संदेह हो सकता है। क्+र=क्र, क्र दोनों रूप में लिखे जाते हैं। संयुक्ताक्षरों के प्रयोग में बहुधा एक और भूल ऐसे शब्दों के विषय में हो जाती है जैसे—अच्छा, चिट्ठी, पत्थर, सिक्ख। बहुधा हम इन्हें अछ्छा, चिठ्ठी, पथ्थर आदि के रूप में लिखते हैं। परन्तु ये अशुद्ध हैं। किसी भी वर्ग के द्वितीय और चतुर्थ का संयोग आपस में नहीं होता है। द्वितीय वर्ण से प्रथम का और चतुर्थ का तृतीय से सयोग होता है जैसे बिच्छू, बुद्धि, गद्दर।

संधि—संस्कृत के शब्दों में बहुधा योग हो जाता है। इस जुड़ने को संधि कहते हैं हिन्दी में अनेक संस्कृत शब्दों का प्रयोग होता है। वैसे तो इन शब्दों के संयुक्त रूप को विद्यार्थी स्वतंत्र रूप से सीखता और प्रयोग में लाता है और ला भी सकता है, परन्तु सुविधा इसी में होगी कि वह अच्छे व्याकरण की सहायता से उनके विश्लिष्ट अंगों को और संधि के नियमों को जान ले। इससे भूल होने की आशंका न रहेगी और विद्यार्थी स्वयं उनकी शुद्धता की परीक्षा कर सकेगा।

कई रूपों में लिखे जानेवाले शब्द—इसके अतिरिक्त कुछ शब्द ऐसे हैं जिनको भिन्न लेखक अलग अलग रूपों में लिखते हैं, जैसे लिए, लिये, चाहिये, चाहिए, आए, आये, आदि। परन्तु अब समय आ गया है कि इन शब्दों के रूप भी निश्चित कर लिये जांय। यहाँ इस विषय के अधिक विवेचन का तो स्थान नहीं है, परन्तु नीचे लिखी बातें विद्यार्थियों को ध्यान में रखनी चाहिए—

(१) 'लिए' और लिये—विभक्ति के लिए लिखी जाय और 'लिये' क्रिया होने पर—'मेरे लिए' और 'आम लिये'।

(२) चाहिए, कीजिए, लीजिए, आइए आदि रूप ही सर्वमान्य हैं। अतः 'ये' का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(३) यद्यपि 'आया' 'गया' में 'या' है परन्तु आई, गई, में 'ई' स्वर का प्रयोग वांछनीय है। विशेषण 'नयी' को इसी प्रकार व्यंजन से लिखना चाहिए।

(४) आएगा, जाएगा आदि रूप ही शुद्ध है आवेगा, आवेगा नहीं।

(५) 'करना' का भूतकाल 'किया' है 'करा' नहीं। दिखालाओ, बतलाओ की अपेक्षा दिखाओ और बताओ ही ठीक है।

(६) टाइप में तथा हिन्दी प्रचार समिति ने संयुक्ताक्षरों के रूपों में कुछ परिवर्त्तन किये हैं और इ ई, उ ऊ, ए ऐ को अि अी अु अू अे अै लिखना प्रारम्भ किया है। परन्तु हिन्दी के नौसिखियों और विद्यार्थियों को इस नये प्रयोग में हाथ नहीं डालना चाहिए। इनको तथा संयुक्ताक्षरों को उपर्युक्त सर्वमान्य रूपों में लिखना चाहिए। परन्तु कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनके एक से अधिक रूप शुद्ध हैं—

अवनि, अवनी, अवलि, अवली, तरणि, तरणी, धरणि धरणी, पृथिवी, पृथ्वी, भृकुटि, भृकुटी, श्रेणि, (कम चलन है) श्रेणी। प्रतिकार, प्रतीकार, कलश, कलस, किशलय, किसलय, वसिष्ठ, वशिष्ठ, कोसल कोशल, केसरी, केशरी, शायक, सायक, कोश, कोष, भृकुटि, भ्रकुटी, भ्रूकुटि (चलन नहीं) मूषक, मूषिक, तुरग, तुरंग, तुरंगम, भुजग, भुजंग, भुजंगम, दम्पति, दम्पती, पूर्णिमा, पूर्णमासी तेल तथा तैल।

अन्य शब्द—इसके अतिरिक्त कुछ अन्य शब्द दिये जाते हैं, जिनके लिखने में साधारणतया भूल हो जाती है—इनके स्वरूप स्मरण रखने चाहिए—

आवश्यकता (क नहीं) सकता, उपर्युक्त (उपरोक्त नहीं) निरपराध, अधीन, शाप (श्राप नहीं) नरक (नर्क नहीं), वाद-विवाद परिणत (परिणित नहीं) जागरित (जाग्रत नहीं) संशोधन (शंशोधन नहीं)

संज्ञा शब्द—भाववाचक संज्ञाएँ बहुधा ई, ता, त्व प्रत्यय लगाकर बनाई जाती हैं; परन्तु कभी कभी लोग दोहरे प्रत्यय लगा देते हैं जिससे शब्द अशुद्ध हो जाता है—गौरवता, साफल्यता, ऐक्यता। विद्यार्थियों को इस भूल से बचना चाहिए।

व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ जब कभी बड़े या आदरणीय व्यक्तियों से सम्बन्ध रक्खें तो तदनुकूल आदरसूचक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। श्रीमान्, श्री, महोदय, मान्यवर आदि शब्दों का प्रयोग करना शिष्टता प्रदर्शन के लिए परमावश्यक है नाम के अग्र में जी लिखने का चलन है सं

केवल उपनाम अथवा केवल नाम के साथ जी आता है तब तो अन्त में लगता ही है, जैसे रामनाथजी और मिश्रजी परन्तु जब नाम और उपनाम दोनो के साथ आता है तब बहुधा लोग भूल से उसे अन्त में लिख देते हैं जो ठीक नहीं। रामनाथजी मिश्र लिखना ही ठीक है।

सर्वनाम—'हम' का प्रयोग बहुवचन में करना चाहिए—अपने लिए 'मैं' ही का प्रयोग उचित है। मध्यम पुरुष में छोटों के लिए तुम और बड़ों के लिए आप का प्रयोग करना चाहिए। अन्य पुरुष 'वह' एक वचन है और बहुवचन में उसका रूप 'वे' होता है; परन्तु आदरणीय व्यक्तियों के लिए एकवचन में होते हुए भी 'वे' और 'उन' का प्रयोग हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल है। अँगरेज़ी के रङ्ग में रँगे हुए कुछ लोगों को इसका ध्यान नहीं रहता। गांधीजी पोर बन्दर में पैदा हुआ था और वह सत्य और अहिंसा के बल पर विश्ववन्द्य हो गया अशुद्ध प्रयोग है। सर्वनाम संज्ञा के बदले मे आते हैं, अतः जब तक संज्ञा स्वयं न आ जाय तब तक सर्वनाम का प्रयोग नहीं करना चाहिए। अँगरेजी की शैली पर लोग हिन्दी में ऐसे वाक्य लिखने लगे हैं—उसने कहा कि वह लखनऊ जायगा। हिन्दी की प्रकृति के अनुसार यदि कहनेवाले को ही जाना है तो शुद्ध प्रयोग होगा 'मैं लखनऊ जाऊँगा।' यदि एक ही वाक्य में उत्तम, मध्यम और अन्य पुरुष हों तो अन्य; मध्यम और उत्तम का क्रम रहना चाहिए। जैसे वे, आप और मैं कलकत्ते चलेंगे।

लिङ्ग—अहिन्दी प्रान्त वासियों के लिए हिन्दी के संज्ञा शब्दों का लिङ्ग निर्णय करने में विशेष कठिनाई होती है। हिन्दी भाषा भाषियों में भी स्थान भेद के अनुसार अलग अलग लिङ्ग योजना है। बनारस की ओर बाग, दही और हाथी आदि स्त्रीलिङ्ग हैं—हाथी आती है, दही खट्टी है, नीची बाग। कहीं कहीं रेलें होतीं और तारें आती हैं। रेल खड़ा हो जाता है और झण्डी दिखाया जाता है। शिष्ट हिन्दी में भी एक ही शब्द भिन्न भिन्न अर्थों में लिङ्ग परिवर्तन कर लेता है; जैसे चाँद (चंद्रमा और खोपड़ी), तारा (लड़की का नाम और आकाश का नक्षत्र), बेल (लता और फल-विशेष), टीका (पोथी की और माथे का लम्बा तिलक); कभी कभी एक ही अर्थ के द्योतक भिन्न भिन्न शब्दों के लिङ्ग भिन्न होते हैं, जैसे परिश्रम-मेहनत, चेष्टा प्रयत्न।

हिन्दी-साहित्य में लिङ्ग का विषय कुछ कठिन है। इसका सम्बन्ध अभ्यास से ही है। क्योंकि इसके निश्चित नियम नहीं हैं। फिर भी कुछ संकेत दिये जा सकते हैं।

(१) कुछ शब्दों का प्रयोग केवल पुँलिङ्ग में होता है—खटमल, मच्छर, बिच्छू, साँप कौवा, कबूतर, और कुछ केवल स्त्रीलिंग में आते हैं; जैसे चील, चिड़िया, मछली मक्खी, गिलहरी, बोली, नदी, हवा इनमें भेद दिखाने के लिए इनके आगे नर अथवा मादा लगा देते हैं; जैसे नर मच्छर और मादा मच्छर।

(२) प्राणहीन शब्दों के लिंग बहुधा उनके रूप के आधार पर होते हैं। हिन्दी के तद्भव आकारान्त शब्द बहुधा पुँल्लिङ्ग होते हैं। जैसे लोहा, चिमटा तवा, दरवाज़ा, बाजरा, आटा, कटोरा, मूसल और ईकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग होते हैं; जैसे रोटी, टोपी, मोरी, किनारी, साड़ी, घड़ी, छड़ी, गाड़ी, हाँड़ी पर संस्कृत के आकारान्त शब्द बहुधा स्त्रीलिङ्ग होते हैं; जैसे क्षमा, दशा, प्रार्थना, व्यञ्जना, अभ्यर्थना, उदारता और कुछ साधारण इया प्रत्ययवाले आकारान्त शब्द भी स्त्रीलिङ्ग हैं; जैसे, खड़िया, फुड़िया, बजरिया आदि।

(३) त्व और पन प्रत्यय से बनी हुई भाववाचक संज्ञाएँ पुँल्लिङ्ग होती हैं—लड़कपन, बचपन, लघुत्व प्रभुत्व, महत्त्व। ता और वट प्रत्यय से बनी हुई भाव-वाचक संज्ञाएँ स्त्रीलिंग होती हैं; जैसे, लघुता, दीनता, क्षमता, हीनता, दिखावट, सजावट, रुकावट आदि।

महीनों के नाम, पहाड़ों के नाम, ग्रहों के नाम (पृथ्वी को छोड़कर), दिनों के नाम पुल्लिंग हैं। नदियों के नाम, तिथियों के नाम, भाषाओं के नाम स्त्रीलिंग होते हैं।

हिन्दी में संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया सब में लिंग परिवर्तन होता है।

वचन—बहुत से संज्ञा शब्दों का एक वचन और बहुवचन में एक-सा ही रूप रहता है, परन्तु विभक्ति लगने के पूर्व उनमें परिवर्तन हो जाता है। जैसे, राजा आये, आम खाये और राजाओं को भेंट दी जाती है। इन आमों

में क्या रोग लग गया ! विशेषण में लिङ्ग और वचन उस संज्ञा के समान ही होते हैं जिसकी वह विशेषता करता है । अच्छा लड़का, अच्छे लड़के ।

विशेषण—विशेषणों के लिङ्ग, वचन विशेष्य के अनुसार होते हैं । कारक से उनमें कोई अन्तर नहीं होता । जैसे बड़े लड़के ने दौड़ लगाई । बड़े लड़कों को बुलाओ । परन्तु यह परिवर्तन या विकार आकारान्त पुँलिंग एक-वचन विशेषणों में होता है । 'आ' का 'ए' हो जाता है । जैसे, बड़ा—बड़े, भला—भले, काला—काले । स्त्रीलिंग विशेष्य के साथ एकवचन और बहुवचन दोनों में आकारान्त विशेषण ईकारान्त हो जाते हैं । बड़ी घोड़ी, बड़ी घोड़ियाँ । सर्वनाम शब्दों से बने हुए विशेषण संज्ञा के वचन और कारक दोनों से प्रभावित होते हैं । वह घोड़ा, उस घोड़े ने, उन घोड़ों ने, जिन विशेषणोंके अन्त में वात् होता है उनका स्त्रीलिंग में वती या मती हो जाता है । गुणवती, बुद्धिमान, रूपवती आदि ।

जब विशेषण शब्दों का प्रयोग संज्ञा शब्दों के अर्थ में होता है तो उनके लिङ्ग, वचन, कारक संज्ञा के समान ही होते हैं । अच्छों अच्छों को देख लिया, दोनों की बात माननी पड़ेगी, अनेकों आये और अनेकों गये ।

तुलना के लिए विशेषणों की उत्तरा और उत्तम अवस्था बनाने के लिए तर और तम प्रत्यय लगाये जाते हैं । जैसे उच्च, उच्चतर, उच्चतम; नीच नीच-तर नीचतम; गुरु, गुरुतर, गुरुतम ।

संज्ञाओं और क्रियाओं से ईय, इक, इत, हारा, वाला, इया आदि प्रत्यय लगाकर संज्ञा शब्द बनते हैं । जैसे, भारत से भारतीय, देश से देशीय, प्रमाण से प्रमाणित, आकस्मिक, तान्त्रिक, यौगिक, लकड़हारा, घरवाला छुर्चेवाला गवैया, रसोइया आदि । किसी अच्छे व्याकरण से शब्दों के विशेषण रूपों को भली भाँति समझ लेना चाहिए; गलत विशेषण नहीं बनाना चाहिए ।

कुछ शब्द ऐसे हैं जिनको लोग दुहरे विशेषण बनाकर भूल से प्रयोग करते हैं; जैसे, निरपराधी (निरपराध शुद्ध), निर्दयी (निर्दय शुद्ध), अमानुषी (अमानुष शुद्ध), एकत्रित (एकत्र शुद्ध), सशङ्कित (शङ्कित शुद्ध) ।

कुछ और अशुद्ध विशेषण शब्द भी हिन्दी में चल पड़े हैं । जैसे, अनुमानित (अनुमित), ग्रसित (ग्रस्त), त्रसित (त्रस्त), गार्हस्थिक (गार्हस्थ्य),

व्यापित (व्याप्त), व्यवहरित (व्यवहृत), विश्वासनीय (विश्वसनीय)। व्यवहारिक और व्यावहारिक दोनों रूप शुद्ध हैं।

क्रिया विशेषण आदि शब्दों को वाक्य शुद्धि के साथ लेंगे; क्योंकि उनका सम्बन्ध प्रधानतः वाक्य-निर्माता से है।

वाक्य-शुद्धि—रचना की प्रधान इकाई वाक्य है। सरल अथवा जटिल, सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध वाक्य-रचना पर ही लेखनकला की उत्तमता निर्भर है। वाक्य शब्दों से बनते हैं, परन्तु शब्दों के यथास्थान होने तथा उलट-फेर कर देने से ही वाक्य-शुद्धि अथवा अर्थ परिवर्तन हो जाता है। एक ओर तो वाक्य शब्दों के समूह से पूर्ण अर्थ को द्योतित करता है और दूसरी ओर कई वाक्य मिलकर अनुच्छेद और परिच्छेद बनाते हैं। इस प्रकार एक सुसम्बद्ध रचना प्रस्तुत हो जाती है, अतः रचना सीखने के लिए वाक्यों की बनावट का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यन्त आवश्यक है।

कर्त्ता और क्रिया वाक्य के प्राण हैं। साधारण वाक्य में पहले कर्त्ता और फिर क्रिया होती है। क्रिया के लिंग और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं; परन्तु सकर्मक भूतकाल की क्रियाओं में जब कर्त्ता के साथ ने विभक्ति का प्रयोग होता है तो क्रिया के लिंग और वचन कर्म के अनुसार होते हैं। लड़का आम खाता है, लड़की आम खाती है किन्तु लड़कों ने आम खाये, लड़कियों ने आम खाये और लड़कों ने रोटी खाई तथा लड़कियों ने रोटी खाई। प्रायः वाक्य में शब्दों का क्रम इस प्रकार रहता है—कर्ता, कर्म और क्रिया। विशेषण तथा क्रिया विशेष उन संज्ञाओं और क्रियाओं के ठीक पहले आते हैं जिनकी वे विशेषता प्रकट करते हैं वाक्य समाप्त होने की ठीक पहचान होनी चाहिए और वाक्यान्त में विराम चिह्न लगाना आवश्यक है। साधारण वाक्य में तो प्रायः यह कठिनाई नहीं आती; परन्तु मिश्र वाक्यों में बहुधा नये लेखक बहक जाते हैं। कुछ संयोजक शब्द जोड़े में प्रयुक्त होते हैं। उनका प्रयोग अवश्य करना चाहिए। यदि—तो, जिधर-उधर जितना-उतना, जहाँ-वहाँ, आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। जैसे, 'जहँ जहँ चरन परैं सन्तन के तहँ तहँ बंटा ढार' जब वह यहाँ आया था तब अबोध बालक था। जहाँ बैठो-वहाँ अच्छी बात करो।

'और' संयोजक से जुड़नेवाले उप वाक्य समकक्ष होने चाहिए। 'इतने में कुछ बालक आये और फल तोड़ने की चेष्टा की' इसमें वाक्य का उत्तरांश पूर्वांश के समकक्ष नहीं है। यहाँ पर चेष्टा की क्रिया का कर्ता बालक नहीं हो सकता, बल्कि बालकों ने होगा। अतः हमको वाक्य के बीच में उन्होंने शब्द जोड़ना पड़ेगा। अतः वाक्य का शुद्ध रूप यह होगा 'इतने में कुछ बालक आये और उन्होंने फल तोड़ने की चेष्टा की'। इसी प्रकार हम लोग खा पीकर चल दिये तो ठीक है; किन्तु हम लोग मीठे मीठे आम और गरम गरम दूध पीकर चल दिये, अशुद्ध है; क्योंकि आमों के साथ पीना क्रिया नहीं आ सकती। शुद्ध रूप यह होगा 'हम लोग मीठे मीठे आम खाकर और गरम गरम दूध पीकर चल दिये।'

ने का प्रयोग---ने के प्रयोग का कुछ संकेत ऊपर दिया जा चुका है; परन्तु इस सम्बन्ध में इतनी अधिक भूलें होती हैं कि इसको विशेष रूप से समझ लेना आवश्यक है। इसका प्रयोग सकर्मक क्रियाओं के सामान्य, आसन्न, सन्दिग्ध, पूर्ण-भूत के कर्तृवाच्य प्रयोग में होता है—अन्यत्र नहीं। तदनुकूल कर्त्ता तथा कर्त्ता के विशेषणों का रूप भी परिवर्तित हो जाता है। 'जो बालक आम खाया' अशुद्ध है; जिस बालक ने आम खाया' शुद्ध है। बनारस, बलिया और इलाहाबाद की ओर प्रायः इसके प्रयोग में भूलें होती हैं। हम छुट्टी लिये हैं, हम अमरूद खाये हैं, हम चिट्ठी लिखे हैं अशुद्ध हैं। इस स्थिति में क्रिया के लिङ्ग और वचन कर्म के अनुसार होंगे, परन्तु जब कर्ता का चिह्न 'ने' और कर्म का चिह्न 'को' दोनों हों तो क्रिया का रूप सदा पुंल्लिंग एक वचन का सा रहता है। 'लड़कियों ने लड़कों को मारा', इसमें 'मारा' क्रिया का रूप किसी पर आश्रित नहीं है। विधि और सम्भावना के रूप दोनों लिङ्गों में समान होते हैं—लिखो, लिखिए; उठो, उठिए; पियो, पीजिए; बालक या बालिका किसी से भी कह सकते हैं।

एक ही क्रिया के अनेक कर्त्ता—यदि कर्ता एक ही लिंग के हों तो क्रिया बहुवचन और उसी लिंग की होगी। 'गायें और भैंसें खेत में चर रही हैं। कर्त्ता यदि भिन्न भिन्न लिंग और वचन के हों तो उत्तम यही होगा कि उनकी क्रियाएँ अलग अलग कर दी जायँ; 'एक लड़का आया और एक लड़की

आईं।' इस सम्बन्ध में व्याकरण के नियम अनिश्चित से हैं। वे सर्वमान्य भी नहीं। कर्णप्रियता और व्यवहार ही पर इस विषय में ध्यान देना चाहिए। बहुधा इस कठिनाई को दूर करने के लिए हम समुदायवाची शब्द का प्रयोग अन्त में कर देते हैं तो क्रिया बहुवचन और पुंल्लिङ्ग की हो जाती है। 'स्त्री, पुरुष, लड़के, लड़कियाँ, घोड़ा गाड़ी, बैल, ऊँट सभी बरात में आये थे।'

यदि एक ही कारक में कुछ संज्ञा शब्द आयें तो कारक-चिह्न केवल अन्तिम शब्द के साथ लगता है। केशव, विमला और शिवदत्त को बुलाओ। परन्तु सर्वनाम शब्दों में हर एक में विभक्ति लगानी चाहिएँ। यह काम मैंने और आपने ही तो किया था।

भावशुद्धि

व्याकरण सम्मत भाषा होने पर भी यह आवश्यक नहीं कि वाक्य से ठीक-ठीक भाव प्रकाशित हो ही जाय। इसके लिए हमको यथायोग्य शब्दों का चुनाव करना पड़ता है, उनको उपयुक्त स्थान में रखकर सामंजस्य रखना पड़ता है। जो लेखक शब्दचयन में जितना ही कुशल होता है उसकी रचना उतनी ही स्पष्ट और सशक्त होती है। भाव और भाषा में जल-तरंग का सम्बन्ध है। गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। भिन्न-भिन्न लेखकों के शब्द-चयन के कारण ही उनके लिखने के ढंग में भिन्नता आ जाती है जिसको हम एक शब्द में शैली कहते हैं। वाक्य रचना में भी इसका ध्यान रखना पड़ता है। इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें नीचे दी जाती हैं जिनसे शिक्षार्थियों को सहायता मिल सकती है।

१—विपरीत अर्थवाले शब्द—हमको बहुधा विपरीत अर्थवाले शब्दों का प्रयोग साथ साथ करना पड़ता है। जैसे, इसमें आकाश-पाताल का अन्तर है, अपना हानि-लाभ सोच लो, इन सर्वसामान्य विपरीत शब्दों में से कुछ ये हैं—

स्त्री-पुरुष	पति-पत्नी	स्थावर-जंगम
चर-अचर	आदि-अन्त	शत्रु-मित्र
श्रद्धा-घृणा	जड़-चेतन	जीवन-मरण
शीत-उष्ण	स्वर्ग-नरक	पाप-पुन्य
सुख-दुःख	उच्च-नीच	निन्दा-स्तुति
विधि निषेध	धर्म-अधर्म	न्याय-अन्याय
चर-अचर	धीर-अधीर	एक-अनेक
अर्थ-अनर्थ	आदर-अनादर	स्वस्थ-अस्वस्थ
उचित-अनुचित	क्रय-विक्रय	मान-अपमान
जय-पराजय	सम-विषम	संयोग-वियोग
उत्कृष्ट-निकृष्ट	स्वतन्त्र-परतन्त्र	आदान-प्रदान

सरस-नीरस	उत्थान-पतन	संगत-असंगत
अनुकूल-प्रतिकूल	उपकार-अपकार	अनुराग-विराग
सुगम-दुर्गम	उन्नति-अवनति	जय-पराजय
भूत-भविष्य	पूर्व-पश्चिम	गुण-अवगुण

२—कुछ शब्द निश्चित क्रम में एक साथ प्रयुक्त होते हैं। ऊपर दिये हुए जोड़े के शब्द ऐसे ही हैं। इसके अतिरिक्त इसी प्रकार के कुछ अन्य शब्द ये हैं—

नदी-नाव	नदी-नाला	हार-जीत
धनु-बाण	गाँव-घर	देर-सबेर
पिता-पुत्र	कुटुम्ब-परिवार	खाना-पीना
माता-पिता	ज्ञान-विज्ञान	उठना-बैठना
राजा-रानी	अन्न-जल	सोना-जागना
तन-मन-धन	जल-वायु	गाना-बजाना
मन-वचन-कर्म	जल-थल	हँसना-रोना
सीता-राम	खट्टा-मीठा	ईर्ष्या-द्वेष
राधे-श्याम	मोटा-पतला	
गौरी-शंकर	रोटी-पानी	

३—जैसे कभी कभी प्रायः-एक ही अर्थवाले शब्दों के एक साथ लिखने का चलन है।

श्रद्धा-भक्ति	झाड़ना-पोछना	खेल-कूद	अनुनय-विनय
धन-धान्य	डाट-फटकार	घास-पात	आहार-विहार
ऋद्धि-सिद्धि	कपड़े-लत्ते	डील-डौल	हरा-भरा
नहाना-धोना	नाच-कूद	खेत-खलिहान	बन्धु-बान्धव
		काट-छाँट	चित्र-विचित्र
जीव-जन्तु	कथा-कहानी	संगी-साथी	जली-भुनी
चमक-दमक	सेवा-शुश्रूषा	दान-दक्षिणा	

वाक्य-रचना—जैसा लिखा, जा चुका है, वाक्य-रचना ही प्रबन्ध-रचना का प्राण है। इस सम्बन्ध में सबसे मुख्य बात यह है कि वाक्यों का अर्थ

बिल्कुल स्पष्ट हो और वे एक दूसरे से सुसम्बद्ध हों। कोई भी कष्ट-कल्पना इसमें बाधक होगी। इसके लिए सब से उत्तम उपाय यह है कि साधारण वाक्य लिखे जायँ। छोटे छोटे वाक्यों में भूल-चूक को स्थान कम मिलता है। परन्तु जहाँ कार्य-कारण का सम्बन्ध स्पष्ट करना होता है, कोई विरोध दिखाना होता है अथवा कोई तुलना करनी पड़ती तब मिश्र अथवा संयुक्त वाक्यों का भी उपयोग करना पड़ता है। इस प्रकार के वाक्यों में बड़ी सावधानी आवश्यक होती है जहाँ तक सम्भव हो, कर्त्ता को क्रिया के समीप रखना चाहिए। पूर्वकालिक क्रिया के योगवाला वाक्यांश पहले लिखकर फिर कर्त्ता, क्रिया आदि लिखने से वाक्य सरल हो जाता है; जैसे, गुरूजी को भोजन देकर बालक घर चला गया, वाक्य इस वाक्य से उत्तम है, 'बालक गुरूजी को भोजन देकर चला गया'। इसी प्रकार मिश्र वाक्य में सम्बन्धवाचक सर्वनाम से जुड़े हुए आश्रित उपवाक्य को पहले लिखने से सरलता होती है। 'वह आदमी, जिसको आपने बुलाया था, आ गया' कुछ बेतुका है; इसके स्थान पर होना चाहिए 'जिस आदमी को आपने बुलाया था वह आ गया।' नवयुवक लेखकों को व्याकरण-सम्मत भाषा का ही यथासम्भव प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार के कुछ वाक्य लिखने का चलन सा हो गया है—सरला झाँक उठी खिड़की में से; नन्दू चल पड़ा साइकिल लेकर जब तक कोई विशेष कारण न हो, तब तक इनका रूप इस प्रकार होना चाहिए—सरला खिड़की में से झाँक उठी; नन्दू साइकिल लेकर चल पड़ा।

अँगरेजी भाषा के प्रभाव के कारण भी हिन्दी लिखने में बहुत सी भूलें हो जाती है। हम बड़े लोगों को एक वचन का प्रयोग करने लगते हैं; अपने के स्थान पर मेरा, हमारा लिखते हैं और अप्रत्यक्ष सम्भाषण का प्रयोग करते हैं;जैसे, 'उसने कहा कि मैं जाऊँगा' के बदले 'उसने कहा कि वह जायगा।' अपने नाम के पहले श्री और अपने लिए 'मैं' के स्थान पर 'हम' का प्रयोग शिष्टसम्मत नहीं। बीच-बीच में अँगरेजी शब्दों का प्रयोग भी नहीं होना चाहिए; जैसे, 'उन्होंने बहुत फील किया'; मेरी साइकिल का टायर बर्स्ट हो गया है।' इसी प्रकार कठिन शब्दों के प्रयोग से भी बचना चाहिए। जिन शब्दों से तुम भलीभाँति परिचित नहीं उनके प्रयोग करने के लोभ में पड़ना

ठीक नहीं। 'रास्ते में मैंने जो भोजन बनाया था, उसको खा लिया' वाक्य अर्थ को ठीक ठीक द्योतित नहीं करता। ठीक भाव यह है 'मैंने जो भोजन बनाया था उसको रास्ते में खा लिया।' ऐसी सावधानी वाक्य बनाते समय रखनी चाहिए जिससे वाक्य में कहीं किसी प्रकार की अस्पष्टता न रहे।

मुहाविरे— मुहाविरेदार भाषा लिखना एक कला है। भाषा में बहुत से प्रयोग प्रचलन के कारण रूढ़ हो जाते हैं और उनके अर्थ वाच्य न होकर लाक्षणिक होते हैं। उनमें परिवर्तन करने का अर्थ है भाषा को बिगाड़ना। वह पाँच-सात दिन में आवेगा; तुम्हारी उन्नति दिन-दूनी और रात-चौगुनी हो; शत्रु के दाँत खट्टे हो गये; तुमने लड़के को सिर पर चढ़ा लिया है; आदि मुहाविरों में हम परिवर्तन नहीं कर सकते। पाँच-सात के स्थान पाँच-आठ करने से अर्थ ही लुप्त हो जाता है दाँत खट्टे के स्थान पर दाँत न तो दन्त हो सकते हैं और न खट्टे के बदले अम्ल ही। मुहाविरे के प्रयोग से भाषा में लालित्य और चमत्कार आ जाता है। ऐसी चलती हुई भाषा का आदर होता है। यहाँ कुछ मुहाविरे और उनके अर्थ दिये जाते हैं

मुहाविरा	अर्थ	मुहाविरा	अर्थ
दाँत लगाना	घात में रहना	नाक-भौं चढ़ाना	क्रोध करना
दाँत खट्टे करना	परास्त करना	नाक-भौं सकोड़ना	पसन्द करना
दाँत दिखाना	हार मान लेना	मुँह फेरना	ध्यान न देना
दाँत निपोरना	कुछ माँगना	हाथ मलना	पछताना
आँख दिखाना	धमकाना	हाथ धोकर पीछे पड़ना	पूरा पूरा विरोध करना
आँख नीची होना	लज्जित होना	पेट काटना	किसी की जीविका छीनना
आँखें चार होना	सामने आना	पेट पानी होना	मरता आना
आपे से बाहर हो जाना	क्रोध करना	बगलें झाँकना	सोच-विचार में पड़ जाना
कमर कसना	तैयार होना	आकाश-कुसुम	असम्भव वस्तु

चूँ न करना	कोई आपत्ति न करना	अरण्य-रोदन	निष्फल प्रयास
टेढ़ी खीर लोहे के चने	कठिन काम	किंकर्तव्य-विमूढ़	कर्तव्य न सूझना
दिन काटना	समय बिताना	पिष्ट पेषण	एक ही बात को दुहराना
दम भरना	अभिमान करना	रंग उतरना	फीका हो जाना
नौ + दो-ग्यारह	भाग जाना	बात बनाना	बहाना करना
तीन + तेरह	इधर-उधर होना	मुँह की खाना	हार जाना, लज्जित होना
तीन-पाँच करना	गड़बड़ करना	पानी पानी होना	लज्जित होना
		आँधी के आए	मुफ्त की चीज
		पैर उखड़ना	भाग खड़े होना

मुहाविरों का भण्डार अनन्त है। इनका अतिमात्रा में प्रयोग करने से सुन्दरता नहीं रहती। परन्तु कोई भी प्रयोग अव्यवहारिक नहीं होना चाहिए

मुहाविरों की भाँति कहावतों का भी प्रयोग होता। ये मुहाविरों से भी कम प्रयुक्त हों तो अच्छा। कहावतें स्वयं पूर्ण वाक्य हैं। उनका प्रयोग वाक्य रचना के बाहर होता है। जैसे, देखिए, ऊँट किस करवट बैठता है; भैंसे के आगे बीन बजावे भैंस खड़ी पगुराय; ऊधो का लेन न माधो का देन, नौ नगद न तेरह उधार आदि कहावतें हैं।

विरामादि चिह्न—रचना में विरामादि चिह्नों का प्रयोग बहुत आवश्यक है। इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है और इनका उपयोग न होने से पढ़ने में असुविधा होती है और अर्थ का अनर्थ हो सकता है। इनका प्रयोग विद्यार्थियों को भली भाँति सीख लेना चाहिए।

पूर्ण विराम (।) प्रत्येक वाक्य के अन्त में खड़ी पाई लगाना आवश्यक है। परन्तु यदि वाक्य के अन्त में रुपये की बिकारी ( )) हो तो इसका प्रयोग करने से एक पैसे का भ्रम हो सकता है, अतः वहाँ इसे न

लगाना चाहिए। छन्दों में दोहा-चौपाई आदि में इकहरी, दुहरी पाई क
भी प्रयोग होता है।

अर्द्धविराम (;)—इसका प्रयोग ऐसे स्थान पर होता है जहाँ एक उ
वाक्य तो समाप्त हो जाता है और पूरा वाक्य भी समाप्त प्राय हो जाता है
परन्तु वाक्य का भाव कुछ सक्रम सा रहता है। ऐसे स्थान पर अर्द्ध विरा
का प्रयोग किया जाता है। जैसे, युद्ध-काल में व्यापारियों ने बड़ा ला
उठाया है; यह सत्य है परन्तु छोटे व्यापारी जहाँ के तहाँ हैं।

स्वल्प विराम (,)—सब से अधिक प्रयोग इसी का होता है निम्नलिखि
अवसरों पर इसका प्रयोग किया जाता है।

(१) सम्बोधन कारक के बाद—हे नाथ रक्षा कीजिए।

(२) आश्रित उपवाक्य के अन्त में—यदि तुम परिश्रम करोगे, तो सफ-
लता अवश्य मिलेगी।

एक ही प्रकार के शब्दों को अलग करने के लिए;—जैसे, चीन, जापान,
जर्मनी, इटली और अन्य कई देश युद्ध में जर्जर हो गये। अन्तिम युग्म में
स्वल्प विराम का प्रयोग नहीं किया जाता।

हाँ और नहीं के पश्चात् स्वल्प विराम लगाना चाहिए। जैसे—हाँ,
उनका कहना ठीक है।

पत्रों, प्रार्थनापत्रों आदि में श्रीमान्, महोदय, प्रियवर आदि
लिखने के बाद स्वल्प विराम लगाना आवश्यक है।

प्रश्नसूचक (?)—प्रश्नवाचक वाक्य के अन्त में प्रश्नसूचक चिह्न
लगाना आवश्यक होता है; परन्तु यदि यह प्रश्न वाक्य किसी मिश्रित वाक्य
से अन्य उपवाक्य का आश्रित हो तो इसका उपयोग नहीं किया जाता। जै
एक मन में कितने सेर होते हैं? यह कुछ चिह्न रहेगा; शिक्षक ने पू
एक मन में कितने सेर होते हैं? यहाँ नहीं लगेगा।

विस्मयादि बोधक (!)—यह चिह्न विस्मयादि सूचक अव्ययों प्र
वाक्यों के अन्त में लगता है। जैसे, वाह! खूब आये।

हाईफेन (-)—समस्त शब्द के खण्डों में इसका प्रयोग होता है
जैसे चरण कमल, दया निधि आदि

डैश (—) इसका प्रयोग कोलन (:) के साथ ऐसे स्थान में होता है जहाँ निम्नलिखित का वर्णन होता है—जैसे, नीचे लिखी संज्ञाओं के विशेषण बनाओ:—

पर्वत, सूर्य, चन्द्र।

उद्धरण के अन्त में भी इसका प्रयोग होता है।

उल्टे स्वल्प विराम चिह्न (" ")—किसी के कथन या उद्धृत अंश को इन चिह्नों के भीतर देने की रीति है।

अनुच्छेद—पूरा निबन्ध अनुच्छेदों में विभाजित होना चाहिए। एक विचार-धारा एक अनुच्छेद में रहे। साधारण रूप से दस-बारह पंक्तियों का एक अनुच्छेद होना चाहिए। लेखक और पाठक दोनों की सुविधा इसी में होगी कि अनुच्छेदों के भी शीर्षक रहें।

यदि तुम शिक्षा-मंत्री बना दिये जाओ तो क्या करोगे

रूपरेखा :—

१—वर्तमान शिक्षा का इतिहास
२—स्वतंत्र भारत की आवश्यकताएँ
३—प्रारम्भिक शिक्षा
४—माध्यमिक शिक्षा
५—विश्वविद्यालय की शिक्षा
६—विज्ञान
७—शरीर-शिक्षा
८—चरित्र-निर्माण
९—अध्यापक

यदि मैं इस समय धारा-सभा का सदस्य निर्वाचित हो जाऊँ, और यदि प्रधान मंत्री मुझे अपने मंत्रि-मंडल में लेना स्वीकार करें, तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि वे मुझे शिक्षा-मंत्री का ही पद दें। शिक्षा से केवल मुझे रुचि ही नहीं है, वरन् आधुनिक स्वतंत्र भारत में शिक्षा का भी महत्त्व और उत्तरदायित्व अधिक बढ़ गया है। अतः शिक्षा-मंत्री के ही पद से मैं इस सम्बन्ध में अपने उन विचारों को कार्य रूप में परिणत कर सकूँगा, जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट होते रहते हैं।

वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था की जड़ लौर्ड मैकोले ने लगभग १५० वर्ष पूर्व डाली थी। उस समय कम्पनी के लिए कर्मचारी प्रस्तुत करना ही उसका मुख्य उद्देश्य था। इसका वर्तमान ढाँचा उसी पुरानी भित्ति पर खड़ा हुआ है। अतः हमारी शिक्षापद्धति अनेक अंशों में सदोष तथा अपूर्ण है। शिक्षा वास्तव में पूर्ण जीवन की तैयारी है। शिक्षा की साधना से जीवन का वास्तविक अर्थ सिद्ध होता है। अब देश स्वतंत्र हो गया है। उसकी आन्तरिक शांति तथा बाह्य देशों से रक्षा उसके नागरिकों की योग्यता पर ही निर्भर है। इसलिए शिक्षा का उत्तरदायित्व और बढ़ गया है। बिना योग्य नागरिकों के प्रजातंत्र राज्य का चलना कठिन है। जब तक जनता को अपने मताधिकार की शक्ति तथा इस सम्बन्ध में अपने दायित्व का ज्ञान नहीं होता और उसके उपयोग की क्षमता नहीं आ जाती, तब तक प्रजातंत्र अशक्त रहता है; योग्य तथा निःस्वार्थ व्यक्तियों का निर्वाचन नहीं होता। अतः

शिक्षा का प्रचार होने से विश्वविद्यालयों की संख्या बहुत बढ़ानी पड़ेगी। आगरा विश्वविद्यालय की भाँति केवल परीक्षा के लिए ही विश्वविद्यालय रखना मेरी योजना में न होगा। शिक्षा प्रदान करना, न कि सुदूरस्थ महाविद्यालयों के विद्यार्थियों की परीक्षा भर ले लेना, विश्वविद्यालय का लक्ष्य होना चाहिए।

विज्ञान—वैज्ञानिक युग में ही हम जीवन यापन कर रहे हैं। अतः इसके अध्ययन, अध्यापन तथा आविष्कारों की पूरी योजना की जायगी। अब तक हमारे विश्वविद्यालयों में उसके उपयोगी और व्यावहारिक अंग की उपेक्षा-सी रही। विज्ञान एक रूप से दर्शन का ही विषय रहा। विज्ञान के स्वतंत्र विश्वविद्यालय और अन्वेषण-गृह खोले जायँगे।

शरीर-शिक्षा—यह विषय शिक्षा-प्रणाली में अब तक उपेक्षित ही रहा। इधर दो-चार वर्षों से इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु जो व्यवस्था अब तक रही है, वह मर्यादा परिपालन मात्र है। जब तक व्यायाम प्रातःकाल न होगा और जब तक स्वास्थ्य के अन्य नियमों के पालन—सोना, जागना, भोजन आदि का समय तथा व्यवस्था ठीक न होगी, तब तक शरीर की समुचित शिक्षा नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यक है कि स्कूलों में अध्यापकों और छात्रों के रहने की व्यवस्था हो। प्राचीन भारतीय शिक्षा में इसकी पूर्ण व्यवस्था थी। विद्यार्थी के पाँच लक्षणों में गृह-त्याग का प्रमुख स्थान था—

काक चेष्टा बकोध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पंचलक्षणम्।

चरित्र-निर्माण तथा आचरण की शुद्धता—शिक्षा का यह अंग आधुनिक शिक्षा-पद्धति में सर्वथा उपेक्षित रहा है। वास्तव में चरित्र-निर्माण शिक्षा का प्राण है। सारी शिक्षा, उसके विविध विषयों आदि का लक्ष्य और परिणाम चरित्र-निर्माण ही होना चाहिए। चरित्र-निर्माण की शिक्षा के लिए मातृ-भाषा की उचित शिक्षा, उसके साहित्य का अनुशीलन, धार्मिक शिक्षा तथा अध्यापकों और गुरुजनों का सम्पर्क सभी आवश्यक हैं। आचरण की शुद्धता के लिए अभ्यास और साधना की   है। इसके

आवश्यक है कि शिक्षा को व्यापक भी बनाया जाय और उसकी उत्तमता की भी अभिवृद्धि हो। इस सांसारिक उपयोगिता के अतिरिक्त शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य का मानसिक, भावात्मक तथा नैतिक और आध्यात्मिक संस्कार करना भी है। अपने शरीर की सभी आवश्यकताएँ—भोजन, वस्त्र, गृह आदि प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्य को कुछ पाना शेष रह जाता है। शिक्षा उसकी पूर्ति करती है। वह मनुष्य के हृदय की भूख शान्त करती है। शिक्षा-मंत्री हो जाने पर मैं निम्न योजनाओं द्वारा शिक्षा को पूर्ण बनाऊँगा—

प्रारम्भिक शिक्षा—प्रारम्भिक शिक्षा सब बालकों और बालिकाओं के लिए आवश्यक होगी। गाँव-गाँव में विद्यालय खोल दिये जायँगे। इस विद्यालय का संचालन ग्रामीण वातावरण में होगा। उसके साथ कुछ भूमि-खंड होगा, जिससे अध्यापकों का जीवन निर्वाह होगा। उसकी योजना इस प्रकार होगी कि जिस भूभाग के बच्चे उस विद्यालय में शिक्षा पावें, उसकी जनता का दायित्व अध्यापक के जीवन-यापन की समुचित व्यवस्था कर देना हो। इस शिक्षा का आधार और उसका सम्बन्ध किसी न किसी ग्रामीण उद्योग से होगा। महात्मा गांधी ने इसका जो स्वरूप बतलाया है और डाक्टर ज़ाकिर हुसैन ने जिसकी विस्तृत व्याख्या की है, प्रारम्भिक शिक्षा का वही स्वरूप मेरा आदर्श है।

माध्यमिक शिक्षा—यह शिक्षा प्रारम्भिक शिक्षा को पूर्ण बनाती है और विश्वविद्यालय की शिक्षा के लिए सामग्री प्रस्तुत करती है। अतः इसकी ऐसी व्यवस्था करने की चेष्टा करूँगा कि जो साधारण श्रेणी के व्यक्ति हैं, वे अपने व्यवसाय का निर्वाचन कर सकें और उसकी शिक्षा पा सकें। इसी अवसर पर विज्ञान, कलाकौशल, पुरातत्त्व, साहित्य आदि के लिए विद्यार्थियों की विशेष रुचि और योग्यता का पता लगा लिया जायगा और उनकी भविष्य की शिक्षा का उसी के अनुसार आयोजन होगा।

विश्वविद्यालय की शिक्षा—देश को समुन्नत बनाने, उसके लिए राजनीतिज्ञ, डाक्टर, यंत्रकार, आचार्य आदि उत्पन्न करने और प्रकृति के अम्बर में से गुह्य तत्त्व अन्वेषण करने वाले विश्वविद्यालय ही हैं। अतः उनकी सहायता मैं बड़ी उदारता से करूँगा, जिससे शिक्षा उच्च कोटि की रहे

शिक्षा का प्रसार होने से विश्वविद्यालयों की संख्या बहुत बढ़ानी पड़ेगी। आगरा विश्वविद्यालय की भाँति केवल परीक्षा के लिए ही विश्वविद्यालय रखना मेरी योजना में न होगा। शिक्षा प्रदान करना, न कि सुदूरस्थ महाविद्यालयों के विद्यार्थियों की परीक्षा भर ले लेना, विश्वविद्यालय का लक्ष्य होना चाहिए।

विज्ञान—वैज्ञानिक युग में ही हम जीवन यापन कर रहे हैं। अतः इसके अध्ययन, अध्यापन तथा आविष्कारों की पूरी योजना की जायगी। अब तक हमारे विश्वविद्यालयों में उसके उपयोगी और व्यावहारिक अंग की उपेक्षा-सी रही। विज्ञान एक रूप से दर्शन का ही विषय रहा। विज्ञान के स्वतंत्र विश्वविद्यालय और अन्वेषण-गृह खोले जायँगे।

शरीर-शिक्षा—यह विषय शिक्षा-प्रणाली में अब तक उपेक्षित ही रहा। इधर दो-चार वर्षों से इसके महत्त्व को स्वीकार किया गया है। परन्तु जो व्यवस्था अब तक रही है, वह मर्यादा परिपालन मात्र है। जब तक व्यायाम प्रातःकाल न होगा और जब तक स्वास्थ्य के अन्य नियमों के पालन—सोना, जागना, भोजन आदि का समय तथा व्यवस्था ठीक न होगी, तब तक शरीर की समुचित शिक्षा नहीं हो सकती। इसके लिए आवश्यक है कि स्कूलों मे अध्यापकों और छात्रों के रहने की व्यवस्था हो। प्राचीन भारतीय शिक्षा मे इसकी पूर्ण व्यवस्था थी। विद्यार्थी के पाँच लक्षणों में गृह-त्याग का प्रमुख स्थान था—

काक चेष्टा बकोध्यानं श्वान निद्रा तथैव च।
अल्पाहारी गृहत्यागी, विद्यार्थी पंचलक्षणम्।

चरित्र-निर्माण तथा आचरण की शुद्धता—शिक्षा का यह अंग आधुनिक शिक्षा-पद्धति में सर्वथा उपेक्षित रहा है। वास्तव में चरित्र-निर्माण शिक्षा का प्राण है। सारी शिक्षा, उसके विविध विषयों आदि का लक्ष्य और परिणाम चरित्र-निर्माण ही होना चाहिए। चरित्र-निर्माण की शिक्षा के लिए मातृ-भाषा की उचित शिक्षा, उसके साहित्य का अनुशीलन, धार्मिक शिक्षा तथा अध्यापकों और गुरुजनों का सम्पर्क सभी आवश्यक हैं। आचरण की शुद्धता के लिए और साधना की है इसके

लिए भी आवश्यक है कि विद्यालयों में छात्रावास हों और अध्यापकों के भी रहने की पूर्ण व्यवस्था हो।

अध्यापक—शिक्षा की जितनी योजनाएँ बन रही हैं और समाज की जो व्यवस्था चल रही है, उसमें सबसे अधिक उपेक्षित अध्यापक है। न तो उन्हें समाज से ही आदर मिला है और न शिक्षा-योजना में ही उसे उचित स्थान मिला है। प्राचीन शिक्षा गुरु-केन्द्रित थी, आज कल न गुरु-केन्द्रित है और न छात्र-केन्द्रित; नवीन योजना शासन-केन्द्रित है। डिप्टी इन्स्पेक्टर और डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टर अध्यापक के ऊपर अनुशासन करते हैं। मैं शिक्षा की पढ़ाई की योजना तो बाल-केन्द्रीय कर दूँगा और शिक्षा का प्रबंध अध्यापक के हाथ में दे दूँगा। इंस्पेक्टर की यदि आवश्यकता होगी तो, उनका स्थान वही होगा जो दफ्तरों के इन्स्पेक्टर का होता है। आदर्श तो यह है कि अध्यापक राजशासन के अधीन न होकर उस पर स्वयं अनुशासन करे। परन्तु संसार की वर्तमान परिस्थिति में यह सम्भव न होगा।

मनोरंजन के आधुनिक साधन

१—मनोरंजन का जीवन में महत्त्व
२—चित्रपट
३—क्लब घर
४—रेडियो, ग्रामोफोन
५—सरकस तथा नाटक कम्पनियाँ
६—मैदानी खेल
७—घरेलू खेल
८—उपन्यास, कहानी
९—ग्रामीण साधन बरात, ढोला, नौटंकी, बाजीगर आदि।

मनोरंजन का जीवन में महत्त्व—मनोरंजन का अर्थ 'मन को प्रसन्न करना अथवा आनन्द देना' है। मनोरंजन हमारे मन का भोजन है और हमारे जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है, जितना शरीर-रक्षा के लिए अन्न, वस्त्र आदि। इसके इतने महत्त्व को बहुत कम लोग स्वीकार करते हैं। बालकों के खेलों का महत्त्व तो इससे भी अधिक है। वे खेलों द्वारा केवल अपनी अनावश्यक शक्ति ही बहिष्कृत नहीं करते, वरन् अपनी इंद्रियों का संचालन इन्हीं से सीखते हैं और विविध सांसारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं। मनोरंजन भी जीवन की एक कला है और उसकी शिक्षा भी अभ्यास द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। कुछ लोग मनोरंजन की सामग्री न मिलने से बड़े दुखी रहते हैं। अवकाश-प्राप्त राजकर्मचारी बहुधा मनोरंजन के लिए साथी की खोज में रहते हैं। कुछ लोग अपने व्यवसाय में इतने व्यस्त रहते हैं, कि उनके जीवन में मनोरंजन की कोई व्यवस्था नहीं। ये दोनों ही बातें उत्तम जीवन-यापन की दृष्टि से ठीक नहीं। वह हमारे जीवन में इसी प्रकार व्यवस्थित रूप से आना चाहिए, जिस प्रकार भोजन, व्यायाम आदि आते हैं।

मनोरंजन का समय भी बँधा होना चाहिए। दिन की थकान के अंत में संध्या का समय ही मनोरंजन के लिए उपयुक्त है। यूरोपवासी, जो जीवन-कला में अधिक कुशल हैं, नित्य के मनोरंजन के अतिरिक्त शनिवार की संध्या और रविवार का दिन विनोद में ही व्यतीत करते हैं और सोमवार को प्रात

काल फिर अपने काम में लग जाते हैं। इससे वे केवल स्वस्थ ही नहीं रहते, वरन् उनका काम भी अच्छा होता है।

मनोरंजन के भी आजकल अनेक साधन है, गाँवों और नगरों के साधन भिन्न-भिन्न हैं। लोगों की शिक्षा तथा सम्पन्नता के अनुसार भी ये साधन अलग अलग है। चित्रपट, सरकस, सैर-सपाटा, ताश, शतरंज आदि घर के भीतर के खेल; मैदानी खेलकूद, उपन्यास और कहानी पढ़ना आदि अनेक मनोरंजन के साधन हैं। अब प्रमुख मनोरंजन के साधनों का कुछ अधिक विस्तृत विवरण दिया जाता है।

चित्रपट—बड़े-बड़े नगरों से लेकर कस्बों तक में आजकल सिनेमाघर खुल गये हैं। धनी, निर्धन, शिक्षित, अशिक्षित सभी प्रकार के मनुष्य सिनेमा-घरों में जाते हैं। लोग नये खेल की प्रतीक्षा बड़ी उत्सुकता से करते रहते हैं। वर्त्तमान समय में आय में अधिक वृद्धि होने के कारण श्रमिक लोग नित्य कर्म की भाँति सिनेमा देखने लगे हैं। नई-नई सिनेमा कम्पनियाँ खुलती जा रही हैं और सिनेमाघर बनते जा रहे हैं। कलकत्ते में चोर बाज़ार से सामान प्राप्त कर अठारह सिनेमाघर आज-कल बन रहे हैं।

चित्रपट आजकल के आविष्कारों की देन है। इसमें फोटोग्राफी और ध्वनि-विज्ञान तथा संगीत, नृत्य आदि अन्यान्य कलाओं का मिश्रण है। पिछले बीस बरस में ही भारत में इनका इतना अधिक प्रचार हो गया है। इसके पहले बड़े-बड़े नगरों में ही मौन चलचित्र दिखलाये जाते थे। चलचित्र केवल मनोरंजन ही नहीं करते, वरन् इससे लोगों के ज्ञान की बड़ी अभिवृद्धि होती है; देश-विदेश की बातों का पता सहज ही में लग जाता है और रुचि-परिष्कार भी होता है। परन्तु अभी हिन्दुस्तानी खेल उतने कलापूर्ण नहीं बन सके, जितने अँगरेजी खेल हैं। अशिक्षित जनता को आकृष्ट करने की दृष्टि से उनमें अशिष्ट तथा कुरुचिपूर्ण बातों का भी बहुधा समावेश कर दिया जाता है। चल-चित्रों के अत्यधिक प्रचार के कारण व्यापारी और व्यवसायी उन्हें अपने अपने विज्ञापन देने लगे हैं, और सरकार उनसे प्रचार का काम लेने लगी है।

आशा है कि कालान्तर में आधुनिक युग का यह सबसे प्रबल मनोरंजन का साधन सुरुचि-पूर्ण तथा कलात्मक होता जायगा।

आमोदावास (क्लब घर)—धनी लोग, उच्च पदाधिकारी तथा वकील, डाक्टर इत्यादि अपने विनोद और मनोरंजन के लिए क्लब बना लेते हैं, जहाँ वे सन्ध्या समय एकत्र होते हैं। टेनिस और ताश इन क्लबों के सर्वप्रिय खेल है। इसके अतिरिक्त अन्य मैदानी तथा घरेलू खेल भी रहते हैं, परन्तु वे इतने प्रिय नहीं। ताशों में शिक्षित लोग बहुधा ब्रिज का खेल खेलते हैं, जिसमें हलके रूप में द्यूतक्रीड़ा का भी आनन्द मिश्रित रहता है। ये क्लब वास्तव में बड़ी उपयोगी संस्थाएँ हैं, जहाँ विचारों का आदान-प्रदान भी होता है और थोडे-से परिवर्तन से ये संस्कृति के भी केन्द्र बन सकते हैं। अभी तक अँगरेजी प्रभाव से इन क्लबों का जीवन समाज से कुछ दूर और दूषित हो चला था। आशा है कि परिस्थिति के परिवर्त्तन से इनमें भारतीयता बढ़ती जायगी। रोटरी क्लब यहाँ के उच्च कोटि के क्लबों में है।

रेडियो तथा ग्रामोफोन—कुछ समय पहले ग्रामोफोन का बड़ा आदर था। भिन्न-भिन्न प्रकार के रेकार्ड लगाकर लोग संगीत का आनन्द लेते रहते थे। परन्तु रेडियो के प्रचार से इसके प्रचार में कमी आ गई है। फिर भी कोई एक दूसरे का स्थान नहीं ले सकता। रेडियो में स्वयं गवैयों के स्थान पर ग्रामोफोन रेकार्ड लगा देते है। रेडियो द्वारा हम केवल संगीत ही नहीं सुनते, वरन् देश-विदेश के समाचार प्राप्त करते हैं और अनेक उपयोगी विषयों पर व्याख्यान भी सुन सकते हैं। शिक्षा, प्रचार तथा मनोरंजन का यह बडा शक्तिशाली साधन है। बड़े-बड़े नगरों में, इसके विकिरण स्थान (ब्रॉडकास्टिंग स्टेशन) बने रहते हैं। वहाँ से गान, समाचार, नाटक आदि संसार में भेज दिये जाते हैं। वह ध्वनि रेडियो द्वारा बड़ी द्रुतगति से संसार भर में फैल जाती है। बिजली की लहरें इस समाचार को ले जाती हैं, जिनकी चाल एक सैकिंड में १८६००० मील है; अर्थात् यह ध्वनि एक सैकिंड में भूमंडल की सात परिक्रमाएँ कर लेती है। आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि २०० फुट लम्बे हॉल में पीछे बैठा हुआ व्यक्ति किसी व्याख्यान को बाद में सुनेगा और सहस्रों मील दूर बैठा हुआ व्यक्ति अपने कक्ष में रेडियो द्वारा उस समाचार को उससे पहले सुन लेगा। यह नाविकों तथा उड़ाकों के भी बड़े काम की वस्तु है और युद्धकला में तो रेडियो का प्रमुख स्थान है।

सरकस तथा नाटक कम्पनियाँ—यद्यपि चलचित्रों के आविष्कार से नाटक कम्पनियों का ह्रास-सा हो गया है, परन्तु सरकस तथा कार्नीवाल अभी आते जाते रहते हैं। नाटक तो अब शिक्षा संस्थाओं में तथा विशेष उत्सवों के अवसर पर ही खेले जाते हैं, परन्तु सरकस व्यावसायिक रूप में चलते हैं। इनमें मनुष्यों और पशुओं की, बड़ी-बड़ी साहस-पूर्ण तथा आश्चर्य-जनक क्रियाएँ दिखलाई जाती हैं। मोटर साइकिल का बड़े संकीर्ण पथ पर गोले में दौड़ना, बंदर का साइकिल चलाना, दौड़ते हुए घोड़े पर शीर्षासन लगाना, हाथी का एक गोले पर चारों पैर रख खड़े होना, सिंह की पीठ पर बकरे का चढ़ जाना आदि बड़े विचित्र खेल इनमें देखने को मिलते हैं।

मैदानी खेल—मैदानी खेलों में क्रिकेट, फुटबौल, हाकी आदि का बहुत मान तथा प्रचार है। अधिक व्ययपूर्ण होने के कारण टेनिस धनी लोगों तक ही सीमित है। इन खेलों के संसार-प्रसिद्ध खिलाड़ियों की विभिन्न देशों की टीमें हैं, जो संसार में भ्रमण करती रहती हैं और मैच खेलती रहती हैं। इन खिलाड़ियों के दर्शकों की संख्या भी बड़ी होती है। बड़ी भीड़ें लग जाती हैं। बहुधा टिकट भी लग जाते हैं। इन खेलों का प्रचार इतना अधिक है कि समाचार-पत्रों को अपना एक पृष्ठ (बहुधा अंतिम) खेलों के ब्योरे के लिए ही देना पड़ता है।

घरेलू खेल—घरेलू खेलों में ताश का सर्वाधिक प्रचार है। अपनी योग्यता के अनुसार सभी श्रेणी के लोग इसे खेलते हैं। ब्रिज से लेकर शाहकार तक इसके खेल खेले जाते हैं। कुछ लोग ताशों से जादू के खेल भी दिखाकर लोगों का मनोरंजन करते हैं। इसके बाद शतरंज का नम्बर है, जिसकी चालों में भूलकर लोगों का खाना-पीना भी हराम हो जाता है और घरवाले भी तंग हो जाते हैं। प्रेम चन्द की 'शतरंज के खिलाड़ी' शीर्षक कहानी में इस खेल का तथा इसके खिलाड़ियों का जीता जागता चित्र अंकित है। चौपड़ भी कहीं कहीं खेला जाता है। अँगरेजी खेलों में कैरम अधिक जनप्रिय हो चला है।

उपन्यास, कहानी—कहानी पढ़ना भी मनोरञ्जन का बड़ा भारी साधन हो चला है अनेक उपन्यास निकल रहे हैं और कहानियों

की पत्रिकाओं की तो बाढ़-सी आ रही है। किसी समय तो चन्द्रकान्ता उपन्यास ने हिन्दी के पाठकों को बड़ा आकृष्ट कर रक्खा था। आजकल माया, मनोरंजन कहानियाँ, रसीली कहानियाँ, छाया आदि पत्रिकाएँ बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। ये कहानियाँ बहुधा उच्छ्‌वसित प्रेम तथा रोमाञ्च से पूर्ण रहती हैं पर उनमें सुरुचि का अभाव रहता है। कदाचित् यही उनकी लोकप्रियता का कारण है।

ग्रामीण साधन—इन मनोरंजन के साधनों का ग्रामों में अभाव-सा है। वहाँ विवाह, शादी, बरात आदि उत्सव मनोरंजन की दृष्टि से भी स्वागत-समारोह किये जाते हैं। इस दृष्टि से इन उत्सवों में उनका बहुत-सा अपव्यय क्षम्य है। इसके अतिरिक्त नौटंकी, कहानी कहना, ढोला सुनना, कबड्डी खेलना आदि मनोरंजन के अन्य साधन हैं। ग्रामसुधार में सरकार को इन साधनों की अभिवृद्धि की ओर ध्यान देना चाहिए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोरंजन के अनेक साधनों में से लोग अपनी अपनी, रुचि अपनी अपनी शक्ति तथा सुविधा के अनुसार अपने लिए कुछ मनोरंजन चुन लेते हैं जो उनको जीवन-सम्बल के रूप में उपयोगी होता है। परन्तु हममें से बहुत कम ऐसे हैं, जिनका मनोरंजन सुरुचि-पूर्ण तथा परिष्कृत होता है। शिक्षा की अन्य शाखाओं के साथ-साथ मनोरंजन की शिक्षा की भी उचित व्यवस्था होने की आवश्यकता है।

एक भिक्षुक की आत्मकथा

मैं जब अपने कालेज को जाता तो नित्य ही मार्ग में, मारुति-नन्दन के मन्दिर के पीछे, एक वृद्ध भिक्षुक को बैठा देखता। वह बड़े मधुर स्वर से 'रघुपति राघव राजाराम' का गान किया करता और राम के नाम पर पैसा माँगता था। बीच-बीच में महावीरजी की जय बोलता था। मैं प्रतिदिन उसी रास्ते निकलता और आते-जाते समय उसे देखता भी था; परन्तु कोई विशेष आकर्षण नहीं होता था। जाड़े के दिन थे। महावट हो रही थी। ठण्डी ठण्डी हवा कलेजे को कँपा देती थी। वृद्ध भिक्षुक एक कमरी ओढ़े दीवार से सटा बैठा था। शाम को जब मैं पढ़कर लौटा तो मेरे कानों में उसकी आवाज़ नित्य की भाँति पड़ी; परन्तु आज उसने आघात किया। 'रघुपति राघव राजाराम' की धुन लगाकर उसने कहा कि "हाय राम! आज बिलकुल कुछ नहीं! क्या बसुमतिया के मुँह में आज दाना भी न जायगा।" मैं रुक गया। मेरे पास एक चवन्नी थी। माताजी ने दी थी कि लौटते समय शाक लेते आना। मैं उसको अब अपने पास न रख सका। भिक्षुक की ध्वनि में ऐसी करुणा भरी हुई थी कि उस समय मेरे पास जो कुछ होता, मैं उसे दे डालता।

अँधेरा हो चला था। बूँदें भी कुछ रुक गई थीं। हवा और भी ठण्डी हो चली थी। वह वृद्ध लाठी टेककर खड़ा हो गया और एक ओर को चल दिया। न जाने उसके प्रति मेरी इतनी सहानुभूति क्यों हो गई थी। कुतूहलवश मैं घर जाने के बदले उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जाने पर वह गली में एक दरवाजे पर रुका। लाठी से दरवाजा खोलते हुए उसने बसुमतिया को पुकारा। दरवाजा खुलने पर एक बारह वर्ष की कन्या आ गई।

लड़की ने मुझ अपरिचित को सामने देखकर नमस्ते किया। अब वृद्ध का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट हुआ। उसने मुझसे अपने साथ आने का कारण पूछा। मैंने कहा कि मैं जब से इस कालेज में पढ़ रहा हूँ तब से तुम्हें नित्य मन्दिर के पास बैठा देखता रहा हूँ, परन्तु आज न जाने क्यों तुम्हारा हाल जानने की उत्कण्ठा हुई। इसी से चला आया हूँ। वृद्ध की अनुमति से मैं

भी उसके साथ भीतर चला गया। वसुमतिया को उसने एक टाट का टुकड़ा लाने को कहा। उसी पर मैं बैठ गया। अब उसने वसुमतिया को चवन्नी देकर बाजार भेज दिया कि छः पैसा का सत्तू, दो आने के चने, एक पैसे का नमक लावे और एक पैसा हनुमानजी पर नित्य की भाँति चढ़ा आवे। मैंने वृद्ध से फिर पूछा कि तुमको देखकर ऐसा लगता है कि तुम्हारा जन्म किसी सम्भ्रान्त कुल में हुआ है। तुम इस दयनीय दशा में कैसे पहुँचे?

भिक्षुक ने कहा—बाबू, पिछली बातों का स्मरण क्यों कराते हो? देर हो रही है। घर के लोग तुम्हारी बाट जोहते होंगे।

मैंने कहा—मैंने तो निश्चय कर लिया है कि आज तुम्हारा परिचय अवश्य प्राप्त करूँगा।

मेरा आग्रह देखकर उसने अपनी रामकहानी इस प्रकार आरम्भ की—बाबू, आज से लगभग ७० वर्ष की बात है, मेरा जन्म लखनऊ जिले में, एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। जिस गाँव में हम लोगों की खेती और घर-द्वार था वह गोमती के तट पर था। मेरा घर नदी के बिलकुल किनारे पर था। मैं जब छोटा था तब हम सब भाई-बहन और मुहल्ले के लड़के नदी में खूब तैरा करते थे। घर पर गाय-भैंसें थीं। दूध-दही की कमी न थी। मैं अपने गाँव के स्कूल में जाकर कुछ पढ़ता-लिखता और खेलता-कूदता था। किसी बात की चिन्ता न थी। मैं लगभग दस वर्ष का रहा हूँगा कि भाग्य ने विश्वासघात किया। हम लोग बेखबर सो रहे थे। रात का सन्नाटा था। एकाएक बढ़िया आ गई। "भागो-भागो, बचो" का शोर मच गया। मुझे इसके बाद का कुछ पता नहीं। होश आने पर मुझे बतलाया गया कि, मैं सरकारी अस्पताल में हूँ। मैंने बाद मे सुना कि गोमती में इतनी जबर्दस्त बाढ़ आई थी कि, हमारा गाँव का गाँव बह गया—गाय-भैंस, बछड़े, अन्न-धन सब कुछ बह गया। मेरे माँ-बाप और भाई-बहन का पता लगाने का बहुत प्रयत्न हुआ, किन्तु कुछ सफलता न मिली। मैं अबोध तो था ही, अपनी यह असहाय दशा देखकर कई दिन तक रोता रहा। अन्त में लोगो के समझाने-बुझाने और भगवान् की दया से मन कुछ पक्का हो गया। अस्पताल से चंगा होने पर जब मैं निकला तो कुछ दिन तक इसी महावीरजी के मन्दिर

में पुजारीजी के यहाँ रहा था। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा थी। फिर मैं अपने गाँव की तलाश में चला। जहाँ गाँव था वहाँ अब बालू थी। गाँव के जो लोग बच गये थे उन्होंने कुछ दूर पर झोपड़ियाँ डाल ली थीं। मेरे परिवार के एक चाचा भी उनमें थे। उन्हीं के यहाँ मैं पहुँच गया। दूसरा उपाय न देख मैं उन्हीं के गोरू चराता और दो रोटियाँ खाकर पड़ा रहता था। अब मैं कुछ बड़ा हुआ तो अपने पिता का और उनकी खेती-बारी का हाल मुझे मालूम हुआ। ठाकुर रामलखनसिंह गाँव के ज़मींदार थे। मैं उनके यहाँ गया। मैंने उनसे अपने खेतों के बाबत कहा। वहीं गाँव का पटवारी उमेदीलाल बैठा था। उसने कहा कि अब तुम्हारे खेत कहाँ? भैया उनको तो गोमती बहा ले गई। मैंने रोकर बहुत विनती की कि सरकार, कमाने-खाने को थोड़ी-सी ज़मीन देने की कृपा कीजिए; परन्तु कुछ सुनवाई न हुई। पीछे पता लगा कि उमेदीलाल की सलाह से ठाकुर ने, किसी क़ानून की आड़ लेकर, मुझे खेतों से बेदख़ल करा दिया था। मैं सिर पीटकर लौट आया।

अब मैंने चाचा के घर में पड़ा रहना ठीक न समझ, भाग्य से भिड़ने के लिए लखनऊ की राह ली। मैं लखनऊ पेपर मिल में मज़दूरी ढूँढ़ता हुआ पहुँचा तो काम मिल गया। मेरे पच्चीस वर्ष उस मिल में बड़े आनन्द से कटे। मुझे जितनी मज़दूरी मिलती थी उसमें से आधी रक़म मैं बचा लेता था। पड़ोसी पण्डितजी ने कृपा करके मुझे रात को घड़ी भर पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिन के अभ्यास से मैं रामचरितमानस पढ़ने और चिट्ठी लिखने योग्य हो गया। पण्डितजी के इस उपकार को मैं जीवन में कभी नहीं भूल सकता। कोई चार वर्ष में मेरे पास ढाई सौ रुपया होगया। मैं बीच बीच में, चाचा के पास, गाँव चला जाता था। उनको कभी कभी कुछ कपड़े दे आता था। इससे वे मुझपर प्रसन्न रहते थे। मुझे खाता पीता देख गाँववालों ने चाचा से कहा कि नाम के ही चाचा हो, भतीजे का ब्याह क्यों नहीं कर देते। इस पर चाचा ने रिश्तेदारों से कोशिश करने को कहा।

चार महीने में एक अच्छे किसान के यहाँ मेरा ब्याह हो गया। गौना होने पर अगले साल मैं स्त्री को लखनऊ ले आया। अब मेरे सुख

का क्या कहना था। छोटी-सी कोठरी में चैन की बंसी बजती थी। दो वर्ष बाद में एक बेटी का बाप बन गया। फिर कुछ समय में दो लड़के और हुए। वे बड़े हुए तो स्कूल में पढ़ने को जाने लगे। मिल में एक होशियार लड़का काम करता था जो मेरी बिरादरी का था। उसी के साथ मैंने बेटी का विवाह कर दिया। इन दिनों मेरी तलब बढ़ गई थी। इतने दिनों का अनुभव होने से मैं अच्छा कारीगर हो गया था। इससे दूसरे लोग मेरा मान करते थे। अफ़सर लोग भी मुझे मानते थे।

इसके बाद शहर में ताऊन की बीमारी फैली। इसमें बहुत आदमी मरे। मेरा घर उजड़ गया। दामाद और बेटी का भी अन्त हो गया। यह वसुमतिया, मेरी नातिन, बहुत छोटी थी। इसकी चाची को दया आ गई। वह इसका पालन करती थी। मैं ख़र्च देता था। इसी बीच एक और विपत्ति आई। मिल में चोरी हो गई और कुछ माल मेरे पड़ोसियों के यहाँ निकला तो पुलिस ने मुझे भी फाँस लिया। झूठे गवाह खड़े किये गये और बिना ही अपराध के मैं जेल में ठेल दिया गया। कोई पैरवी करने वाला होता तो मैं साफ़ बच जाता, लेकिन क़िस्मत साथ छोड़ चुकी थी। जेल में जाने पर मुझे सबसे अधिक दुःख इस बात का हुआ कि जिन लोगों ने बड़े-बड़े जुर्म किये थे उन डाकुओं और हत्यारों के साथ मुझे रहना पड़ता था। जिनका मुँह देखने में भी पातक है उनसे बातचीत करनी पड़ती थी। उन्हें रत्ती भर भी चिन्ता जेल काटने की न थी, वे तो कई बार जेल-यात्रा कर चुके थे, इससे हँसी-ख़ुशी में रहते थे और मुझे भी नम्बरी दाग़ी समझते थे। जेल-जीवन में मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया और मानसिक दुर्बलता ने भी दबा लिया। वहाँ ऐसा बीमार पड़ा कि कई महीने अस्पताल में रहना पड़ा। डाक्टर भलामानस था। उसकी कृपा से मेरा रोग तो दूर हो गया, परन्तु उसने मेरी शक्ति सदा के लिए छीन ली। अब मेरी सज़ा की अवधि पूरी हो गई थी।

जेल से बुरा स्वास्थ्य और नैराश्यपूर्ण जीवन लेकर मैं बाहर निकला। शरीर में इतनी शक्ति न थी कि मैं दूसरी जगह जाकर मजदूरी कर सकता। जेल भोगने के कारण मिल के फाटक मेरे लिए बन्द हो गये थे; नहीं

तो जो कारीगरी मैं जानता था उससे मेरी आमदनी अच्छी हो सकती थी। अब दूसरा सहारा न देख मैं भिखारी का जीवन व्यतीत करता हूँ इस जीवन से मुझे घोर घृणा है। भीख माँगना बड़ा भारी अपराध है इसको जानकर भी मैं अनन्योपाय हूँ। मैं राष्ट्र के लिए बोझ हो रहा हूँ। शायद निराशा मुझे जीवन से छुटकारा दिला देती; किन्तु इस बसुमतिया की ममता मुझको देह के बन्धन में बाँधे हुए है। राम जाने, मुझे कब तक यह दुःख और भोगना है।

भिक्षुक की दुर्गति का यह ब्योरा सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। उसके आग्रह करने पर अब मैं घर जाने के लिए उठा और धीरे धीरे घर के लिए चल पड़ा। देर से घर पहुँचने पर माता ने कारण पूछा। वे बहुत ही चिन्तित थीं। मैंने जब भिक्षुक का हाल सुनाकर बतलाया कि शाक-सब्ज़ी की चवन्नी उसी को दे आया हूँ तो वे बहुत सन्तुष्ट हुईं। उन्होंने कहा कि कल उसके लिए कुछ सामान लेते जाना। दीनों की सेवा करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं।

मैं दूसरे दिन कुछ जल्दी ही उसके घर पर आटा, दाल, चने और नमक लेकर गया तो उसने मेरी बहुत प्रशंसा की, हाथ जोड़े; किन्तु सामान लेने में यह कहकर असमर्थता प्रकट की कि मैं अपने घर पर किसी प्रकार की सहायता नहीं लेता। मैं तो उसी मन्दिर का चाकर अपने को समझता हूँ। वहीं रहने से मैं गाँव जाकर मनुष्य बन सका था और अब असमर्थ होकर उन्हीं महावीरजी की कृपा से, उनकी छत्र-छाया में, जो कुछ पा जाता हूँ उसी पर निर्वाह करता हूँ।

भिक्षुक का यह प्रण देख मैं वह सामान लेकर मन्दिर चला गया और जब वहाँ वह पहुँचा तब उसे दे दिया। अब मैं बीच-बीच में उसको वहीं कुछ दे आता हूँ। माताजी ने कह रक्खा है कि जब बसुमतिया का विवाह हो तब उसको विशेष सहायता दी जाय। हमारी आमदनी में दीन-दुखियों का भी हिस्सा है और वह हमें उनको अवश्य दे देना चाहिए।

हिन्दू पर्व

रूपरेखा :—

१—पर्वों का महत्त्व
२—हिन्दू पर्वों का सामान्य दृश्य
३—हिन्दुओं के पर्व—श्रावणी, विजयादशमी, दिवाली, होली आदि।
४—राष्ट्रीय पर्व
५—भारतीय पर्वों की विशेषताएँ
६—पर्वों का माहात्म्य।

पर्व तो प्रायः सभी समुन्नत जातियों में मनाये जाते है; पर हिन्दुओं के यहाँ इनकी अधिकता है। बौद्धों के यहाँ पर्व मनाये जाते हैं, जैनों में कई प्रसिद्ध पर्व हैं जिनमें से कुछ तो बड़े समारोह से मनाये जाते हैं। मुसलमान भी त्यौहारों को मानते हैं।

पर्व के दिन एक न एक विशिष्ट धार्मिक कृत्य सम्पन्न होता है और पर्व का सारा कार्य प्रायः महिलाएँ सँभालती हैं। पंचांगों को देखे बिना ही उन्हें ठीक स्मरण रहता है कि किस महीने की किस तिथि को कौन-सा पर्व आ रहा है, उस दिन कौन कौन-से कार्य किये जायँगे और कौन कौन-सी सामग्री आवश्यक होगी। वह सामग्री दो-एक दिन पहले ही मँगा ली जाती है। पर्व के लिए घर को विशेष रूप से लीप-पोतकर स्वच्छ कर लिया जाता है। लड़के-बच्चे या तो नये कपड़े पहनते हैं या साफ़ धुले हुए। उस दिन विशिष्ट भोजन बनता है। आवश्यकता हुई तो पुरोहित को बुलाया जाता है। दान-दक्षिणा दी जाती है। कुछ लोग भोजन करने के लिए बुलाये जाते हैं। यों अच्छे भोजन का हिस्सा सभी को मिल जाता है और चाहें तो कह सकते हैं कि हिन्दुओं में यह साम्य-वाद चला आ रहा है। जिनकी सामर्थ्य अच्छा पक्वान्न अपने घर बनवाकर खाने की नहीं है उनकी तृप्ति का प्रबन्ध इस प्रकार हो जाता है। 'परजा' लोगों को त्यौहारी दी जाती है। घर में प्रसन्नता और आनन्द का वायु-मण्डल अपने आप प्रस्तुत हो जाता है। इस दृष्टि से पर्व का बड़ा महत्त्व है। उसमें धर्म और समाज का समन्वय है

ऐसे मुख्य पर्व हिन्दुओं में चार हैं—श्रावणी, विजयादशमी, दीपावली और होली। इन त्यौहारों का प्रचलन हिन्दू-समाज में आ-सेतु-हिमालय है। अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रत्येक हिन्दू इनको मनाता है। वैसे श्रावणी ब्राह्मणों का, दशमी क्षत्रियों का, दीपावली व्यापारियों का और होली चतुर्थ वर्णवालों का है। परन्तु चारों पर्वों को सभी वर्ण अपना समझते और इस भेदभाव को रत्ती भर भी नहीं मानते कि यह तो अमुक वर्ण का त्यौहार है, इसे हम क्यों मानें।

श्रावणी (सलूनो) का नाम अब रक्षाबन्धन अधिक प्रचलित है। श्रावण की पूर्णिमा को प्राचीन ब्राह्मण किसी सरोवर के तट पर वैदिक विधि से 'उपाकर्म' किया करते हैं; इसमें लगभग आधा दिन लग जाता है; पर लोग अब इस कार्य से कुछ कुछ विरत रहते हैं। हाँ, घर में बढ़िया भोजन ज़रूर बनता है, राखी बाँधने को ब्राह्मण आते और दक्षिणा पाते हैं। भाई को बहन राखी बाँधने में अपना महत्त्व-पूर्ण कर्त्तव्य अनुभव करती है। पहले मुग़ल बादशाहों में पक्षपात बहुत कम था, इसलिए कुछ मुग़ल बादशाह रक्षाबन्धन पर्व को धूमधाम से मनाने और दान-दक्षिणा देते थे। इतिहास में लिखा है कि गुजरात के शासक ने जब चित्तौर पर आक्रमण कर दिया तब रानी ने अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए बादशाह हुमायूँ के पास राखी भेजी और बादशाह ने बड़ी प्रसन्नता से राखीबन्द भाई बनकर एक हिन्दू क्षत्राणी की रक्षा करने के लिए अपने सहधर्मी बादशाह को पराजित करने का पूरा प्रबन्ध कर दिया। यह रक्षाबन्धन का त्यौहार श्रावण की पूर्णिमा के सुहावने अवसर पर होता है। बागों में झूले पड़े होते हैं। सर्वत्र हरियाली नेत्रों को शान्ति देती है। मलार का गान मन को प्रफुल्लित करता है। प्रायः मेले लगते हैं जहाँ विविध वस्तुएँ बिकतीं और लोग हिंडोले झूलकर प्रसन्न होते हैं।

विजयादशमी आश्विन शुक्ल दशमी को होती है। इससे पूर्व 'नवरात्र' में शक्ति की आराधना की जाती है। दशमी को मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्रजी ने आततायी दशानन पर विजय प्राप्त करके भारतीय संस्कृति की प्रतिष्ठा की थी। उसकी स्मृतिरक्षा भारतवासी इसी तिथि को बड़े समारोह से करते हैं। बड़े-बड़े नगरों में रामलीला की जाती है और दशमी को अन्तिम युद्ध का

अभिनय करके कागज़ का रावण भस्म कर दिया जाता है। बड़े हर्ष से आतिश-बाज़ी छोड़ी जाती है। काशी और प्रयाग जैसे प्रसिद्ध नगरों में अनेक स्थानों पर रामलीला की जाती है। इसमें सहस्रों रुपयों का ख़र्च होता है। कैसा अच्छा होता कि रावणवध का रहस्य सभी लोग भली भाँति समझते। विजयादशमी का माहात्म्य समस्त देश में समान रूप से है। राजस्थान में इसी अवसर पर दरबार लगते हैं। प्राचीन काल में राजा लोग दशहरे पर ही विजय के लिए निकलते थे।

मारकण्डेय पुराण में दुर्गाजी की कथा है। यह सतयुग की बात है। सुरथ नाम का एक राजा था जो सूर्य का पुत्र था। वही आगे चलकर आठवें मनु सावर्णि नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह एक बार अपने ही कुटुम्बियों तथा शत्रुओं द्वारा युद्ध में परास्त कर दिया गया। तब वह खिन्न होकर मेधा ऋषि के आश्रम में गया। वहाँ जाकर उसने ऋषि को सारा हाल सुनाया तो उन्होंने कहा कि वत्स, दुर्गा का पूजन करो। वे ही महामाया हैं जो भगवान् के संकेत पर सारे जगत् का संचालन किया करती हैं। इसके बाद ऋषि जी ने दुर्गा माता के उत्पन्न होने की कथा, तथा शुम्भ-निशुम्भ, महिषासुर, चण्ड-मुण्ड और रक्तबीज आदि बड़े भयानक दैत्यों को मारने की कथा कही। रक्तबीज की कथा सुनाते हुए मेधा ऋषि ने कहा कि, दुर्गा माता को रक्तबीज के मारने में विशेष श्रम करना पड़ा था। जब-जब माता उसे मारने के लिए तलवार, बाण आदि से प्रहार करती थीं, तब-तब उसके शरीर के रक्त के पृथ्वी पर गिरते ही सहस्रों रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। एक बूँद से एक रक्तबीज उत्पन्न होता था। इस प्रकार एक रक्तबीज से सहस्रों रक्तबीज पैदा हो जाते थे। यों सैकड़ों वर्षों तक यह युद्ध चलता रहा। अन्त में दुर्गा माता ने अपना दूसरा रूप धारण करके उसके रक्त को पृथ्वी पर गिरने से पहले ही पीना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार न रक्त की बूँद पृथ्वी पर गिर पाती थी और न नया रक्तबीज उत्पन्न हो पाता था। धीरे-धीरे उन्होंने सब को मार डाला।

मेधा ऋषि के समझाने-बुझाने पर राजा सुरथ ने भी माता की नवरात्रियों में पूजा का व्रत किया। व्रत और पूजन के प्रभाव से सुरथ ने सब शत्रुओं को परास्त कर अपना राज्य फिर प्राप्त कर लिया और मनु का उच्च पद प्राप्त किया। उसका यश अब तक अमर है।

दिवाली कार्त्तिक की अमावस को मनाई जाती है। यह व्यापारियों का पर्व है। बरसात में घरों में सील होती है, सफ़ेदी धुल जाती है, कुछ कूड़ा-कचड़ा भी जमा हो जाता है। इसको दूर करने के लिए दीपावली का शुभागमन होता है। घरों में सफ़ेदी की जाती है। टूट फूट की मरम्मत हो जाती है। रात को दिवाली की जाती है और लक्ष्मी-पूजा होती है। दीपों के प्रकाश से बरसाती कीड़े-मकोड़े मर मिटते हैं। इससे स्वास्थ्य ठीक होता और हवा भी स्वच्छ हो जाती है। मिठाई, बताशे और धान के लावे इस पर्व की ख़ास चीज़ें हैं। दियों की बिक्री से कुम्हार को, तेल की बिक्री से तेली को, मिठाई और लाये की बिक्री से हलवाई और भुँजवे को लाभ होता है। खिलौने खूब बिकते हैं। धनतेरस को बनारस की ठठेरी गली में बड़ा प्रसिद्ध मेला लगता है। उस दिन काँसे-पीतल के बर्तनों की बिक्री बहुत होती है। व्यापारी लोग नया बहीखाता खोलते और हिसाब-किताब करते हैं। कुछ नासमझ लोग दिवाली की रात को जुआ खेलकर अपने और घरवालों के जीवन को नष्ट कर डालते हैं। सरकार की ओर से इसके लिए मनाही होती है। इसलिए कितने ही जुआड़ी उत्सव की रात्रि में स्वयं संकट को न्यौता देते हैं।

होली का त्यौहार वसन्त ऋतु में मनाया जाता है। यह ऐसा समय है जब ठण्ड प्रायः गुलाबी रहती है। बौरों की महक चित्त को प्रसन्न रखती है और कोयल की मीठी तान प्राण में नवीन रस का सञ्चार कर देती है। नई फ़सल आ जाने से जनता को हर चीज़ सुलभ रहती है। किसान के लिए तो यह समय बड़े ही आनन्द का होता है। पूर्णिमा की रात को मुहल्लों-मुहल्लों में होली जलाई जाती है। ढोल बजाकर लोग फाग गाते और नाचते हैं। कभी-कभी लड़के जनता की आवश्यक वस्तुएँ होली में जलाकर अनर्थ खड़ा कर देते हैं। यह नितान्त निन्द्य अकार्य है। अच्छा ढँग तो यही है कि हर घर से चन्दा लेकर होली के लिए लकड़ियाँ मोल ली जायँ, किसी की वस्तु छीनी-झपटी न जाय और बने रस को बिगाड़ने की चेष्टा भूलकर भी न की जाय।

होली के दूसरे दिन रंग-गुलाल की मार होती है। उस दिन सड़क पर से कोई अछूता नहीं जाने पाता। कुछ लोग कीचड़ या तारकोल डालकर लोगों के शरीर और कपड़ों को दूषित कर देते हैं। यह भी बुरा काम है।

हमको चाहिए कि न तो स्वयं ऐसा करें और न दूसरों को करने दें। इस अवसर पर गालियाँ बकना भी निन्द्य कार्य है। पवित्र होली मनाने का आन्दोलन करके लोग इस कुरीति को हटाने का प्रशंस्य प्रयत्न कर रहे हैं।

इस दिन प्रातःकाल एक और महत्त्व का कार्य सम्पन्न किया जाता है—वह है अछूतों से गले मिलना। जो लोग हमें छुवाछूत का दोषी बतलाते हैं वे यह नहीं देखते कि हमारे सभी कामों में सामंजस्य है। जो गन्दे से गन्दे रहते हैं उन्हें भी इस दिन समाज अपने-क्रोड़ में सानन्द लेता है। होली के उपलक्ष्य में भंग या किसी दूसरे नशे का सेवन उत्सव के महत्त्व को चौपट कर देता है। इस कुरीति को हटाने के लिए नशा-निषेध आन्दोलन कार्य कर रहा है। मुसलिम-मनोवृत्ति जब विकृत नहीं हुई थी, तब अच्छे मुसलमानों को होली से परहेज़ न था, यदि उस समय उनके मुहर्रम की रस्म न हो रही हो; किन्तु मनोवृत्ति दूषित हो जाने पर रंग और अबीर को लेकर मियाँ भाइयों ने पिछले वर्षों में कहीं-कहीं हिन्दू-मुसलिम दंगे करवा दिये थे जिससे अपार हानि हुई थी। अब पाकिस्तान बन जाने से भारतीय मुसलिम जनता को आत्मबोध हो गया है। इस कारण ऐसे झगड़ों को अब स्थान ही नहीं रहा। फिर भी हमें दूसरों के भाव का विचार करके ही अपने आमोद का विस्तार करना चाहिए। यह कोई सभ्यता नहीं कि दूसरे का दिल दुखाकर हम आनन्द मनावें।

इन मुख्य पर्वों के अतिरिक्त चैत्र में रामनवमी, भादों में कृष्णजन्माष्टमी, श्रावण में नागपञ्चमी, आश्विन में दुर्गाष्टमी, कार्त्तिक में देवोत्थानी एकादशी, माह-पूस में मकर की संक्रान्ति और वसन्त पञ्चमी का प्रसिद्ध पर्व पड़ता है। इन पर्वों का पृथक्-पृथक् इतिहास और महत्त्व है और ये पर्व ऋतुविशेष में विशिष्ट दृष्टिकोण से रक्खे गये हैं। इन अवसरों पर जो पक्वान्न बनाये जाते हैं, उनका स्वास्थ्य से बड़ा सम्बन्ध है।

अँगरेज़ी सभ्यता के सम्पर्क में रहते-रहते कुछ लोग इन्हें ढकोसला समझने लगे थे; परन्तु महात्मा गांधी के आन्दोलन ने ऐसे लोगों को स्वदेश का अमूल्य चश्मा दिया है जिसको लगाने से उनको अब अपनी वस्तु का महत्त्व मालूम होने लगा है। इधर देश के स्वाधीन हो जाने से हमारी दृष्टि और भी परिष्कृत हो गई है हमको अपनी और दूसरे की वस्तु का पार्थक्य मालूम

होने लगा है। पहले जो लोग कोट-पैंट, टाई-कालर और हैट के मोह में थे वे ही आज भारतीय वेश-भूषा के उपासक हो रहे हैं।

भारत के स्वाधीन हो जाने से इधर राष्ट्रीय त्यौहारों का प्रचलन हो गया है जिनको भारत की समग्र जातियाँ—विना किसी भेद-भाव के—मनाती है। ये त्यौहार हैं—स्वाधीनता-दिवस (१५ अगस्त), गांधी-जयन्ती (अक्टूबर का प्रथम सप्ताह), तिलक-जयन्ती (१ अगस्त), स्वाधीनता-स्मारक-दिवस (२६ जनवरी), गांधी-बलिदान दिवस (३० जनवरी) आदि। इनके अतिरिक्त देश के अन्य अनेक देशभक्तों की स्मृति में उत्सव मनाये जाते हैं जिन्होंने स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर आत्माहुति दे दी है। इनमें से कुछ उत्सव तो स्थानीय महत्त्व रखते हैं; किन्तु पूर्वोल्लिखित का महत्त्व सार्वदेशिक है।

भारत के इन त्यौहारों पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि मुख्य पर्व ऋतुओं के सौन्दर्य के साथ चलते हैं। होली पर नवान्न तैयार होता है। दिवाली बरसात की गन्दगी को दूर करती है और धान तथा ज्वार-बाजरे की खेती के पकने का समय आता है। श्रावणी वर्षा की फुहारों में आती है। अतएव उत्सव की भावना स्वतः ही जनसमुदाय के मन में उदय होती है।

मानव समाज में पर्वों की बड़ी आवश्यकता है। उनसे धर्म-भावना की पुष्टि होती है। पर्व धर्म का रसात्मक रूप है। उनसे इस संकटमय जीवन की शुष्कता दूर होती है। थोड़ी देर के लिए मनुष्य दरिद्रता, रोग, ऋण आदि तापों से अवकाश पा जाता है। वह दशहरे में रामलीला देखता है; होली पर फाग गाता है; सावन में झूले पड़ जाते हैं, कंठ खुल जाते हैं; दिवाली पर प्रकाश हो जाता है और कृष्णजन्माष्टमी पर रासलीला तथा गान आदि होते हैं। इससे सामाजिक प्रेम बढ़ता है तथा वर्णचतुष्टय की एकता स्थापित होती है। होली पर जिस प्रकार यहाँ छोटे-बड़े सब गले लगते हैं, उसी प्रकार दुर्गापूजा पर बंगाल में सब लोग एक दूसरे से मिलते हैं। पर्व समाज का जीवन है और जीवन का रस है।

ताजमहल

रूपरेखा :—

१—शाहजहाँ तथा मुमताज़ ३—परिपार्श्व
२—निर्माण ४—कला तथा सौन्दर्य
५—संग्रहालय, जल-कल आदि

एक बार किसी अमरीकन प्रसिद्ध यात्री से भारत-यात्रा के समय एक संवाददाता ने पूछा कि यहाँ आकर आप कहाँ कहाँ जायँगे। उसने उत्तर दिया कि मुझे यहाँ केवल तीन वस्तुएँ देखनी हैं—सेवाग्राम में गांधीजी, आगरे में ताजमहल और नगराज हिमालय के तुषारमण्डित हिमशिखर।

वास्तव में ताजमहल विश्वविश्रुत इमारत है। वास्तुकला का तो यह चरमोत्कर्ष है ही, साथ ही मानव-हृदय का भी सर्वोत्कृष्ट उज्ज्वलतम एवं प्रेममय स्मारक है। इसकी ख्याति के ये दोनों ही कारण हैं।

भारत के मुग़ल-इतिहास में ही नहीं, समस्त मुसलमान शासकों में एक शाहजहाँ ही था जिसने एकपत्नीव्रत का पालन किया और पत्नी की मृत्यु के बाद कभी दूसरी स्त्री की बात सोची ही नहीं। शिशु को जन्म देने में माता की जान पर आ बनी थी। अन्तिम घड़ियाँ थीं। उन सुखमय दिनों के प्रेम तथा सुख से पूर्ण छलकते हुए हृदय का अन्त होनेवाला था। भारत-सम्राट् के स्नेह का वह प्रदीप्त दीपक, स्नेह रहते हुए भी, अकाल के झंझा में बुझ रहा था। भारत-सम्राट् प्राणप्रिया की पाटी के सहारे बैठा हुआ था। दोनों में मौनालाप हुआ, आँखें मिलीं, अस्फुट वाणी निकली—'स्मारक चिरस्थायी हो।' आँखें बन्द हो गईं। दीपक बुझ गया। शाहजहाँ के नेत्रों से आसुओं की बूँद निकली। यही बूँद आज भी हम ताजमहल के रूप में देख रहे हैं।

सम्राट् ने स्थायी स्मारक बनाने का निश्चय कर लिया। उसने निश्चय किया कि मुमताज की सूखी हड्डियों पर ऐसा समाधि-मन्दिर बनवाऊँगा जिसके

समान संसार में और दूसरा भवन हो ही नहीं। धीरे-धीरे सामग्री एकत्र की जाने लगी। दूर-दूर से नामी कारीगर बुलाये गये। राजपूताने से संगमर्मर आया। सन् १६३१ ईसवी में इसका निर्माण आरम्भ हुआ। इसमें बीस सहस्र कारीगर नित्य कार्य करते थे और इसके निर्मित होने में बीस वर्ष लगे। पहले यमुना नदी के तट पर लाल पत्थर का एक चबूतरा बना और उस पर सङ्गमर्मर का दूसरा चबूतरा बनाया गया। इसके चारों कोनों पर दो प्रेमियों की प्रेमगाथा सुनाने के लिए चार मीनार खड़े किये गये। बीच में शनैः-शनैः मकबरा उठा। इसको एक बड़े गुंबद का ताज पहनाया गया।

अत्यन्त रमणीक उद्यान में बने हुए इस सुन्दर मकबरे का वर्णन जड़ लेखनी नहीं कर सकती। अनेक शताब्दियाँ बीत गईं, कितने ही साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ, इस समाधि के निर्माता का वंश भी लुप्त-सा हो गया; परन्तु यह समाधि मन्दिर अपने सौन्दर्य से काल को भी चकमा देकर आकाश में मस्तक ऊँचा करके संसार को सम्राट् की यह वाणी सुना रहा है—"हे प्रिया, मैं भूला नहीं हूँ।"

ताजमहल तक पहुँचने के लिए लाल पत्थर के प्रवेश द्वार से जाना पड़ता है। इस द्वार पर तथा अन्य सभी मुख्य द्वारों पर कुरान की आयतें लिखी हुई हैं। काले पत्थर के कटे-छँटे अक्षर श्वेत पत्थर में जड़े हुए हैं और उनका आकार इस अनुपात से रक्खा गया है कि ३० फुट ऊँचे द्वार पर भी उनका वही आकार मालूम पड़ता है जो कि नीचे। कहीं जोड़ के चिह्न भी प्रकट नहीं होते। समाधि-मन्दिर के मार्ग के दोनों ओर सरो के पेड़ों की मनोरम पंक्तियाँ हैं। छोटे-छोटे तालाबों में रंग-बिरंगी मछलियाँ हैं और जहाँ तहाँ दूब के हरे-हरे मखमली गद्दे बिछे हैं। ताज का विशाल गुम्बद अपनी महत्ता से हमारे हृदय को दबा लेता है। इसकी ऊँचाई २७५ फुट है। गुम्बद के कलश का पूरा चित्र पृथ्वी पर खिंचा हुआ है। बिना उसके हमको किसी प्रकार अनुभव नहीं हो सकता कि ये छोटे-से कलश इतने बड़े हैं। इस गुम्बद में जहाँ तहाँ बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे। उनकी जगह अब काँच लगे हुए हैं। शरद् ऋतु की पूर्णिमा को ये असंख्य तारागणों की भाँति चमकते हैं। उसकी छटा को देखने के लिए शरद्

पूर्णिमा की रात को बड़ा मेला लगता है। उस रात्रि को चन्द्रिका-धौत ताज दूध में अवगाहन-सा करता है। यमुना-जल में उसका अमल धवल प्रतिबिम्ब लहराने लगता है। दर्शकों की टोलियाँ मीनारों पर, चबूतरों पर, जहाँ तहाँ दृष्टिगोचर होती है।

मुमताज महल की समाधि के पास ही शाहजहाँ की समाधि है। इसके लिए गुम्बद में से नीचे सीढ़ियाँ जाती हैं। मुमताज की कब्र पर कुरान की आयतें लिखी हुई हैं, परन्तु शाहजहाँ की कब्र पर नहीं। धर्म के कट्टर पाबन्द औरंगजेब को यह आशंका थी कि किसी दिन इन पर मनुष्य के पैर पड़ सकते हैं इसी से उसने ऐसा किया। यहाँ तक जाने के लिए दर्शकों को जूते उतारने पड़ते हैं और वहाँ के मुल्ला की मशाल का आश्रय लेना पड़ता है। कहा जाता है कि साल में एक बार इस गुम्बद को पार करके कभी एक बूँद इन कब्रों पर टपक जाया करती है।

इसको बने तीन सौ वर्ष से अधिक हो गये, परन्तु इसकी शोभा और सुन्दरता में किसी बात की कमी नहीं आई। सूर्य की प्रखर किरणें, विद्युत्-प्रकोप, वायु के थपेड़े, पानी की झड़ी, ओलों की बौछारें और शीत की कठोरता उसका बाल भी बाँका नहीं कर सकी। वह इन सबको उसी प्रकार शान्ति और धैर्य से सहन करता जा रहा है जिस प्रकार महत् पुरुष दुर्जनों की कटूक्तियों को कुछ भी नहीं समझते। ताज पूर्व की वास्तुकला का अनुपम निदर्शन है। भवन की विशालता, पत्थरों की जुड़ाई, पच्चीकारी, चित्रकला, खुदाई, कटाई आदि देखकर आज के इस विज्ञान-युग के विद्वान् भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

यहाँ पर एक अजायबघर भी है। उसमें मुग़ल बादशाहों के अस्त्र-शस्त्र और बर्तन आदि सुरक्षित हैं। आजकल की, मिट्टी की कारीगरी की भी बहुत-सी चीज़ें वहाँ रक्खी हुई हैं। उनको दर्शक मोल भी ले सकते हैं। ताज के उद्यानों को यमुना से पानी देने की भी बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। उससे विश्वास हो जाता है कि मुग़ल-काल में भी आधुनिक नल आदि की सब विद्याएँ ज्ञात थीं ताज के मुख्य भाग के बाहर एक और उद्यान है जो ग्रीष्मोद्यान के नाम

से विख्यात है। आगरे की भीषण गर्मी और मरुस्थली में लोग बहुधा, अवकाश पाकर, इस उद्यान में अपनी ताप शान्त करने चले जाते हैं।

आगरा-दुर्ग की एक बुर्ज में एक चवन्नी भर का काँच का टुकड़ा लगा है। उसमें सारा ताज, उसके नीचे से प्रवाहित कालिन्दी की लहरों के साथ, प्रतिबिम्बित होता है। कहा जाता है कि शाहजहाँ अपने अन्तिम दिनों में इसी स्थान पर रहा था और इस संसार की अन्तिम वस्तु जो उसने देखी थी वह यही ताज था, जिसमें उसकी प्रिया मुमताज़ समाधि लगाये हुए थी।

शिष्टाचार

सभ्यता शिष्टाचार की जननी है। दूसरों के प्रति सद्व्यवहार का ही नाम शिष्टाचार है। जहाँ कहीं भी हम अपने से अलग होकर दूसरों के सम्पर्क में आयेंगे, वहीं हमको शिष्टाचार की आवश्यकता पड़ेगी। सदाचार और शिष्टाचार का घनिष्ठ सम्बन्ध है, परन्तु जहाँ सदाचार अपने ही से सम्बंधित है, वहाँ शिष्टाचार का सम्बन्ध अपने से इतर प्राणियों के साथ व्यवहार से है। प्रणाम, नमस्कार, स्वागत, चलने, बैठने, भोजन करने आदि सभी कार्यों में शिष्टाचार का पालन आवश्यक है। शिष्टाचार के नियम देश,काल तथा समाज के अनुसार भिन्न भिन्न हैं। जो भारतीय शिष्टाचार चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के समय में था, आज नहीं है। इँग्लैंड में जो शिष्टाचार है, वह भारत में नहीं। फिर घर का शिष्टाचार अलग है, स्कूल का भिन्न है और राजदरबार का तीसरे प्रकार का है। स्त्रियों और पुरुषों के शिष्टाचार के अलग-अलग नियम हैं। कुछ लोग हाथ-पैर धोकर, कपड़े उतारकर, चौके में भोजन करते हैं, तो दूसरे उन्हें मूर्ख घोंघा बसन्त समझते हैं और जूते पहन कर मेज़-कुर्सी पर भोजन करते हैं। कहीं स्त्रियाँ कपड़ों में लिपटी हुई लज्जा में गड़कर बैठती हैं, तो कहीं सिर खोले ऊँची एड़ी के जूते पहने हुए इधर से उधर दौड़ती दिखाई पड़ती हैं। एक वर्ग दूसरे के व्यवहार को अशिष्ट समझता है। परन्तु इन ऊपरी भेदों के होते हुए भी समाज के सभी वर्गों के शिष्टाचार की कुछ ऐसी मौलिक बातें है, जो सब में समान हैं। यदि हम किसी अपरिचित समाज अथवा देश में पहुँच जायँ, तो हमको साधारण

रूप से इन्हीं मौलिक सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर अपना व्यवहार निर्दिष्ट करना चाहिए।

शिष्टाचार का पहला मूल मंत्र है—मधुर भाषण। बात चीत बिना किसी बनावट के करनी चाहिए। मुस्कान बातचीत का आभूषण है। कविवर मतिराम ने इसके विषय में उचित ही कहा है 'बानी कौ बसन कैधौं बात के बिलास डोलें' अर्थात् जैसे मंद वायु में वस्त्र हिलता है, वैसे ही बातचीत में मुस्कान मुख पर नृत्य करती रहे। अप्रिय बात न की जाय। कहा है—'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।' प्रिय सत्य बोलो, परन्तु अप्रिय सत्य न बोलो। मीठी वाणी का अर्थ चापलूसी नहीं है; शील और विनय का अर्थ दीनता नहीं है। दीनता के भय से बहुत-से लोग अपना शील भी खो बैठते हैं। उनके मुख पर झूठी ऐंठ दिखाई देती है। यह कुशिक्षा का प्रभाव है। वाणी में निष्कपटता और शीतलता होनी चाहिए—

> ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
> औरन को सीतल करै, आपौ सीतल होय॥

मीठी वाणी को संतों ने वशीकरण मंत्र कहा है। 'वशीकरन एक मंत्र है, तजि दे बचन कठोर'। देखिए न—

> कागा काको धन हरै, कोयल काको देय।
> मीठे बचन सुनाय के, जग अपनो करि लेय॥

बात का बड़ा महत्त्व है 'बात ही हाथी पाइए, बात ही हाथी पाँव।' परन्तु यह मुस्कराहट बड़ी संयत होनी चाहिए। न तो यह बनावट का रूप ग्रहण करने पावे और न अनादर का।

दूसरी आवश्यक बात यह है कि हमको अपनी सुविधा, प्रतिष्ठा तथा रुचि के साथ-साथ दूसरों की सुविधा, रुचि तथा प्रतिष्ठा का भी ध्यान रखना चाहिए। दूसरों के प्रति ठीक वैसा ही व्यवहार करना चाहिए, जैसे की आशा उनसे हम अपने लिए रखते हैं। यदि हम इसी दृष्टि से अपरिचित परिस्थितियों में भी व्यवहार करें, तो एक तो भूल की बहुत कम आशंका रहेगी और भूल हो भी जाने पर लोग बुरा न मानेंगे। व्यवहार में सदुद्देश्य की प्रेरणा मिलेगी

तीसरी बात यह है कि यदि हमको किसी देश अथवा समाज के शिष्टाचार का ज्ञान नहीं है, तो उसके अनुकरण करने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोग धोबी के कुत्ते की भाँति न घर के रहते हैं और न घाट के। वे अपने समाज में भी अपनी हँसी कराते हैं, और दूसरे भी उन पर हँसते हैं। इसमें अपने समाज का अपमान भी होता है। भारत के नवयुवक अब तक अँगरेज़ी आचार-व्यवहार की नकल कर साहब बनने के लिए लालायित रहते थे। यहाँ के पिताजी पापा हो गये, माताएँ 'मम्मी' बन गईं और भोजन बैराओं के हाथ में चला गया। गांधीजी ने इस साहबियत के विरुद्ध बड़ा ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया। आशा है, अब देश स्वतंत्र हो जाने पर भारतवासी अपनी संस्कृति और सभ्यता को छोड़ दूसरों का भद्दा अनुकरण न करेंगे।

चौथी बात यह है कि हमको दूसरों के विचारों, भावनाओं तथा व्यवहारों के प्रति सहिष्णु होना चाहिए। दूसरों के अशिष्ट व्यवहार के प्रति भी हमको सहिष्णु होना चाहिए। किसी की मूर्खता, कुचेष्टाएँ अथवा दुर्गुण देखकर हँसना भी मूर्खता है। व्यंग से मनुष्य सुधार करने के स्थान पर चिढ़ और जाते हैं। अतः घृणा अथवा उपहास के स्थान पर भूल करनेवालों के प्रति सहानुभूति होनी चाहिए।

मित्रमण्डली, सुहृद-गोष्ठी अथवा समाज में बहुत बातचीत न करनी चाहिए। दूसरों को भी अवसर देना चाहिए। नहीं तो रसाभास हो जायगा। अपनी बात अधिक न करनी चाहिए। अवसर आने पर भी टाल देना चाहिए। दूसरों की बात भी जब तक नितान्त आवश्यक न हो, काटना न चाहिए। बड़े लोगों के बीच में न बोलना चाहिए। बिना पूछे अपने प्रस्ताव न देने चाहिए। किसी की गोपनीय बातों को सुनने की चेष्टा न करनी चाहिए और न बीच में किसी की बात काटनी चाहिए। शिष्टाचार के इन्हीं मूल सिद्धान्तों के आधार पर देश-देश के अलग-अलग चलन हो गये हैं। शिष्टाचार की कुछ उपयोगी बातों का वर्णन यह है:—

१—बड़ों को सदैव 'आप' कहना चाहिए। छोटों से 'तुम' कहा जाता है। राजमन्त्रियों के नाम के आगे 'माननीय' लिखा और बोला जाता है। अपने नाम के आगे 'श्री' अथवा पंडित का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

२—किसी नये व्यक्ति से परिचय होने के समय उसे 'प्रणाम', 'नमस्कार' 'नमस्ते' आदि करना चाहिए। बड़ों से प्रणाम चिल्लाकर या उन्हें बुलाकर नहीं किया जाता। शांति और नम्रता से तथा थोड़ी ही दूर से किया जाता है।

३—यदि अपने से बड़ों के साथ चलना पड़े, तो उनसे एक दो पग पीछे रहना चाहिए। यदि वे पीछे हों तो उनको आगे होने के लिए मार्ग देना चाहिए। यदि किसी द्वार पर पर्दा पड़ा हो तो, उसे आगे बढ़कर, उनके लिए उठा देना चाहिए।

४—मेज़ पर हाथ रखकर अथवा उस पर झुककर बात नहीं करनी चाहिए। सामने सीधे या तो खड़े रहना चाहिए अथवा बैठ जाना चाहिए।

५—अपने यहाँ किसी के आने पर खड़े होकर स्वागत करना चाहिए। उनको बिठाकर, स्वयं बैठना चाहिए। जब वे जाने लगें तो कम से कम द्वार तक उन्हें पहुँचा आना चाहिए।

६—स्त्रियों और बच्चों को प्रत्येक प्रकार की सुविधा देनी चाहिए। आने-जाने, गाड़ी पर चढ़ने-उतरने आदि में उनको पहले अवसर देना चाहिए।

७—घर पर अतिथि के आने पर उसके भोजन कर लेने के बाद अथवा साथ भोजन करना चाहिए। साथ भोजन करने में शीघ्रता न करनी चाहिए। उसके साथ अन्त तक कुछ न कुछ खाते रहना चाहिए।

८—दूसरों के घरों में झाँकना न चाहिए। नौकरों, नाइयों अथवा बच्चों से दूसरों के घरों की बातें भी न पूछनी चाहिए।

९—कसम खाना अथवा मित्रों से गाली-गलौज के साथ (चाहे वह प्रेमपूर्वक ही क्यों न हो) बातचीत करना अशिष्ट है।

१०—किसी देश के राष्ट्रीय गान अथवा झंडे का निरादर नहीं करना चाहिए। राष्ट्रीय गान के समय खड़े हो जाना चाहिए।

११—धार्मिक बातों पर तर्क करने से बचना चाहिए। यदि विशेष रूप से किसी धार्मिक विषय पर वाद-विवाद का कोई आयोजन हो तो बात दूसरी है।

१२ अपने से छोटों के साथ स्नेह का व्यवहार करना चाहिए उनको भूत

ूत से अथवा अँधेरे से डराना नहीं चाहिए। भोजन भी उनको पहले देना चाहिए।

—यदि किसी मित्र से बहुत दिन बाद भेंट हो तो उसकी यह कहकर परीक्षा नहीं लेनी चाहिए कि पहचाना या नहीं; उसे अपना नाम शीघ्र बतला देना चाहिए।

—शव का आदर करना चाहिए। किसी पड़ोसी या मित्र के यहाँ कोई मृत्यु हो जाय तो वहाँ अवश्य जाना चाहिए और समवेदना प्रकट करनी चाहिए।

—किसी से यह नहीं पूछना चाहिए कि कहिए, आप कहाँ जा रहे हैं। दूसरों की गोपनीय बातें जानने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए और न किसी की चिट्ठी पढ़नी चाहिए। किसी से उसका वेतन और जाति नहीं पूछनी चाहिए।

—यदि किसी के घर जाओ तो उसकी चीजें उलट-पुलट नहीं करनी चाहिए और न बगीचे से फल-फूल तोड़ने चाहिए।

—पत्र का उत्तर यथासंभव शीघ्र देना चाहिए।

—सभ्य समाज में डकार लेना, खखारना, जीभ निकालना, नाक में उँगली डालना, जँभाई लेना, अँगड़ाई लेना, कान में उँगली या क़लम डालना, उँगली चटकाना इत्यादि बुरा समझा जाता है। खाँसी या छींक आवे तो मुँह पर रूमाल रख लेना चाहिए।

—जहाँ जाने की आज्ञा न हो अथवा तार या दीवार हो उसे पार करके नहीं जाना चाहिए। सड़क पर किसी से बातचीत करनी हो तो एक ओर खड़े हो जाना चाहिए।

—मँगनी की चीज़ मँगनी नहीं देनी चाहिए। जब तक नितान्त आवश्यकता न हो तब तक ऋण नहीं लेना चाहिए।

शिष्टाचार की ये कुछ ही बातें हैं। उसकी सर्वाङ्ग-पूर्ण सूची बनाना व नहीं। मोटी-मोटी बातें लिखने के लिए ही एक पुस्तक की ्यकता होगी। शिष्टाचार की बातें तो साधारण-सी ही हैं, परन्तु उनका न में बड़ा महत्त्व है। जो शिष्टाचार नहीं जानता, वह पग-पग

पर अपमानित होता है। शिष्ट व्यक्ति स्वयं सुखी रहता है और उससे अन्य व्यक्ति भी प्रसन्न रहते हैं। वह बातों में ही अपना इतना काम बना लेता है, जितना अन्य व्यक्ति परिश्रम करने और रुपया व्यय करने पर भी नहीं सम्पन्न कर सकते। शिष्टाचार सभ्यता का चिह्न है। इससे आत्मसंयम भी होता है। इस प्रकार शिष्टाचार से मनुष्य का सांसारिक लाभ तो होता है, साथ ही वह आत्माअनुशासन का पाठ भी पढ़ता है।

भारत की भ्रमणशील जातियाँ

बनजारा १—बैलों के व्यापारी। ये अधिकतर पश्चिमी जिलों में रहते हैं। (२) व्यापारी-दल, पहले बैलों, भैंसों, घोड़ों आदि पर माल लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाना इन्हीं का काम था।

धरकार—पूर्वी जिलों के धरकार बाँस की चीज़ें डलिया, सूप, पंखा आदि बनाते हैं।

कंजड़ १—सिरकी का काम करनेवाले। (२) पाल बनाने और खस की टट्टियाँ बनानेवाले हैं। कुछ आबाद भी हो गये है।

नट १—कलाबाज़ी के खेल दिखलाते हैं। (२) वंशावलियाँ याद करते हैं।

मदारी—रीछ और बन्दर नचाता है।

भूभड़िया—अपने को राजपूत कहते हैं। कुल्हाड़े, हँसुआ आदि बनाते और मरम्मत कर देते हैं। चाहे पैसे लेते चाहे अनाज ले लेते हैं। गाड़ी में अपना सामान लिये हुए यात्रा करते हैं। मारवाड़ के हैं।

सँपेरा—तरह-तरह के साँप रखते और इन्हीं का खेल दिखाते हैं।

बाजीगर—खेल दिखाता है।

मारवाड़ी—भेड़-बकरीवाले। शाद्वल की तलाश में घूमते रहते हैं।

इतिहास के प्रणेताओं का कहना है कि सृष्टि के आरम्भिक युग में मनुष्यों टोलियाँ जीविका-निर्वाह के लिए इधर-उधर घूमती रहती थीं। उनका एक ठौर-ठिकाना न था। गाँव ही न थे, शहर होते ही कहाँ। धीरे-धीरे ष्य जाति ने उन्नति करके गाँव बसाना और एक ही स्थान में रहकर हेल- से निर्वाह करना सीख लिया और संसार में अब भ्रमणशील जातियें) की संख्या अधिक नहीं है फिर भी कुछ ऐसी जातियाँ

संसार में इस समय भी हैं जिनको किसी गाँव या नगर में घर बनाकर रहना बिलकुल पसन्द नहीं। वे स्वच्छन्दता से घूमना ही पसन्द करती हैं। इनके पास गृहस्थी का सामान भी अधिक नहीं होता। हम लोगों को बहुत चीज़ों की आवश्यकता रहती है; किन्तु ये जातियाँ उतना ही सामान साथ रखती हैं जिसके बिना निर्वाह ही न हो सके; क्योंकि अधिक सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान तक साथ ले जाने में बड़ी कठिनाइयाँ रहती हैं।

इन घुमक्कड़ जातियों में बड़ी निर्भयता और सूझ बूझ रहती है। ये लोग बस्तियों के बाहर पड़ाव डालते हैं, बस्ती में किसी के घर नहीं ठहरते और बिना जान-पहचानवालों को अपने घर टिकने ही कौन भला मानस देगा! कुछ जातियाँ तो अपनी छोलदारियाँ लिये रहती हैं। उनको बस्ती के बाहर लगा दिया जाता है। इनके कुत्ते भी बड़े चौकन्ने होते हैं। मजाल क्या कि कोई बिना जान पहचानवाला इनके डेरों के पास तक पहुँच जाय। किसी-किसी के पास बकरी और सामान लादने के लिए घोड़ी भी होती है। परन्तु अधिकांश लोग सामान स्वयं लादकर चलते हैं। क्या पुरुष, क्या स्त्री और क्या बच्चा सभी को सामान लादकर पैदल चलने का अच्छा अभ्यास रहता है। यद्यपि इनको खाने-पीने के लिए बढ़िया माल नहीं मिलता, फिर भी कष्ट सहिष्णुता और परिश्रमशीलता के कारण ये प्रायः नीरोग और शरीर से सुडौल होते हैं। स्वावलम्बी होने से इनको चिन्ता भी अधिक चिन्तित नहीं करती। बस्ती से सदा बाहर रहने और प्रकृति की गोद में प्रतिपालित होने से तथा अपरिचित लोगों से व्यवहार करते-करते ये बड़े निर्भय रहते हैं। इनमें संघशक्ति अपूर्व रहती है। आपस में ये भले ही लड़ें-भिड़ें, सिर-फुटौवल करें; परन्तु किसी को इनका विरोध करने की हिम्मत नहीं होती। उस समय ये सभी एक हो जाते हैं। ऐसी कुछ जातियों का हाल सुनिए—

बनजारा—यह भारत की आदिम जाति है। बनजारों की भाषा अलग होती है; रीति-रिवाज भी विभिन्न हैं। ये प्रायः किसी के हाथ का बनाया भोजन नहीं करते। हमारे यहाँ कभी गोधन समुन्नत दशा में था। उस समय किसी-किसी बनजारे के पास एक एक लाख तक बैल होते थे। ये लोग बैलों का रोज़गार करते थे। गाँव में जब बिक्री के लिए बैल लेकर ये पहुँचते

तो किसानों का मेला-सा लग जाता था। जिसकी जैसी हैसियत होती थी उसके अनुरूप वह बैलों की जोड़ी छाँट लेता था और सौदा कर लेता था। फुट्टैल बैल कम मिलता था। किसी किसी बनजारे से, अधिक मेल-जोल हो जाने पर, उधार सौदा भी हो जाता था। किन्तु ऐसा बहुत कम होता था। बनज़ारा बात का धनी समझा ज़ाता था। इस कारण उन लोगों की साख थी। आज गोधन का बहुत ह्रास हो गया है। बैल बेचने का रोज़गार दूसरे लोग भी करने लगे हैं।

बनजारे का प्रमुख काम था यातायात को सँभालना। बनजारा 'वणिज' से बना है। लोग कहा भी करते है 'सब ठाट पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा।' बैलों पर अन्न और नमक आदि लादकर ये लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जाकर या तो व्यापारी के हाथ बेच देते और वहाँ से दूसरी वस्तुएँ लादकर आगे को चल देते थे अथवा किसी व्यापारी का माल होता तो निर्दिष्ट व्यक्ति को सौंपकर अपना किराया लेते और वहाँ से माल लादकर इसी तरह अन्य स्थान के व्यापारी को सौंपते थे। इस प्रकार देश में एक छोर से दूसरे छोर तक इनका आवागमन होता रहता था। जिनके पास अच्छी रक़म हो जाती थी उसको ये रास्ते में किसी स्थान पर गाड़ देते और अपनी पहचान के लिए वहाँ संकेत बनाकर चले जाते थे। किसी को स्वप्न में भी यह शंका न होती थी कि यहाँ पर बनजारा कुछ सोना-चाँदी गाड़ गया होगा। जब दस-बीस वर्ष में उसे रुपये की ज़रूरत होती तो वह फिर उसी स्थान के आस-पास आकर डेरा डालता और रात को अपनी सम्पत्ति उखाड़ कर बहुत तड़के ही चला जाता। दूसरे दिन लोग जब उधर से निकलते और वहाँ खुदे हुए गहरे गड्ढे में किसी बर्तन का निशान पाते, नारियल फूटे हुए देखते और सिंदूर आदि पूजा का सामान पाते, तब मालूम होता कि बनजारा अपना दफीना उखाड़ ले गया है। मालदार बनजारे के पास एक लाख बैल होते तो उसका नाम लाखा बनजारा पड़ जाता। देश मे इन लोगों का बड़ा आदर था।

जब से हमारे यहाँ रेलगाड़ियों ने माल लादने का काम अपने हाथ में ले लिया है, इनका काम चौपट हो गया है। इन लोगों की संख्या भी कम

हो गई है। जिन अगम्य स्थानों में रेल नहीं पहुँची है वहाँ पर यातायात का काम या तो बनजारों के हाथ में है या इन्हीं से मिलती-जुलती अन्य जातियों के हाथ में। बदरीनाथ और केदारनाथ की यात्रा-लाइन में आज भी अन्न और नमक आदि सामान खच्चरों और बकरे-बकरियों की पीठ पर लादकर ही पहुँचाया जाता है।

बनजारों का विवाह रास्ते में ही चटपट हो जाता है। उसकी स्त्री के प्रसव भी रास्ते में ही होता और वह दो-एक दिन में ही अपने नवजात-शिशु को पीठ पर बाँधे हुए आराम से बैलों को हाँकती चली जाती है। उसका ऐसा अच्छा स्वास्थ्य और कार्यतत्परता आज की शिक्षित रमणी के लिए ईर्ष्या की वस्तु है।

धरकार-युक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों में एक जाति धरकार नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि इस जाति के लोग घर बनाकर गाँव में भी रहते हैं, परन्तु इनके झुण्ड के झुण्ड, घुमक्कड़ बने, खाने-कमाने को दूर-दूर तक निकल जाते हैं। इनका रङ्ग पक्का होता है। इनमें मदिरा और मांस का चलन है। ये बड़े मेहनती होते हैं। बाँस को फाड़ना, चीरना और उसकी पतली-पतली कमचियाँ बनाकर टोकरियाँ, चिकें, डलियाँ और पंखे आदि बनाना इनका पेशा है। इस काम को ये बड़ी फ़ुर्ती से किया करते हैं। पुरुष कमचियाँ बनाता है तो स्त्रियाँ डलियाँ बनाती हैं, लड़के कमचियों को रँगते हैं और यह काम मशीन की तरह होता रहता है। शाम को जब सामान तैयार हो जाता है तो पुरुष उसको लेकर बेचने के लिए बस्ती में निकल जाता है। वहाँ घूम फिर कर माल बेच देता और भोजन का सामान लेकर डेरे पर लौट जाता है। वहाँ घरवाली रोटियाँ बना देती है। फिर सब लोग खा पीकर पेड़ की छाँह में सो जाते हैं। ओढ़ने-बिछाने के लिए इनके पास कपड़े नाममात्र को रहते हैं फिर भी ऐसे सुख से सोते हैं कि महलों में क़ीमती बिछौने पर सोनेवाले ऐसी नींद के लिए तरसते हैं।

एक बार प्रयाग में, दारागंज मुहल्ले के समीप, धरकारों का पड़ाव जाड़े के मौसिम में पड़ा हुआ था। वहाँ देखा कि दिन को तो ये सब लोग धूप में बैठकर तन्मयता से दौरी आदि बनाया करते और रात को पूस-माघ की कठोर ठण्ड को फटे-पुराने चिथड़ों में, पेड़ों के तले, आराम से सह लेते थे यह

जाति चोरी आदि के लिए कुख्यात है। इस कारण इन लोगों पर पुलिस की दृष्टि रहती है।

मध्यप्रदेश में इनकी एक शाखा बसोर कहलाती है। बाँस की चीज़ें बनाने के कारण सम्भवतः इनका यह नाम पड़ा है। ये घुमक्कड़ नहीं है। बस्ती में अपने घर में रहते हैं। बाजा बजाने का पेशा भी करते हैं। इनकी स्त्रियाँ दाई (धात्री) का काम कर लेती है। इनमें धरकारों की सी दृढ़ता नहीं है। एक जगह रहने से इनमें दूसरी दुर्बलताएँ भी हैं।

नट—यह जाति कलाबाज़ी दिखाने के लिए बहुत प्रसिद्ध है। खेल दिखाते समय एक आदमी सधे हुए हाथ से धड़ाधड़ ढोल बजाता जाता है। आवाज़ सुनकर तमाशा देखनेवालों की भीड़ बढ़ने लगती है। बाँसों को ये पेड़ के सहारे अच्छी तरह कसकर बाँध देते हैं और उस पर कोई नट या उसका बेटा बड़ी सफ़ाई से चलता और ताल ठोककर दर्शकों को चकित कर देता है। ऐसे खेल करने से नट का शरीर बड़ा सुडौल और कसा हुआ हो जाता है। इनमें से कोई-कोई कसरत करके कुश्ती भी दिखलाने लगता है। इनाम पाकर ये लोग बड़े अच्छे ढंग से दाता की प्रशंसा करते हैं। पश्चिम के जिलों में नटों को कुछ गाँवों के मुख्य लोगों की कई पुश्तों की वंशावलियाँ याद रहती हैं। इनाम पाकर दाता का यश वर्णन करते समय इसको वे सुनाते हैं। सर्वथा अशिक्षित होने पर भी इस प्रकार इनकी स्मरणशक्ति प्रखर रहती है। जब हमारे यहाँ सरकश का खेल नहीं था, तब नट की कलाबाज़ी का बड़ा आदर था। अब तो इसकी चाह ग्रामीण जनता में ही रह गई है। नटराज का कोई बँधा स्थान नहीं होता—वे आज इस गाँव में हैं तो कल कहीं दूसरे में अपनी कला का प्रदर्शन करते मिलेंगे। यह दूसरी बात है कि किसी नट पर लक्ष्मी की कृपा हो जाय तो वह बस्ती मे घर बनाकर रहने लगे, नटिनी आभूषणों से अलंकृत हो जाय और कलाबाज़ी दिखाने के बदले कोई दूसरा उद्यम करने लगे।

मदारी का खेल शहर और गाँव सभी जगह देखने को मिलता है। कोई रीछ को नचाकर अपना निर्वाह करता है तो कोई बन्दर और बँदरिया का अभिनय दिखाता है; बँदरिया के रूठ जाने और बन्दर के मनाने का तमाशा

दिखाता तथा दूसरे खेल करके अपनी जीविका चलाता है। यद्यपि वह बन्दर और बँदरिया को सिखाकर वश में रखता है, फिर भी काम उसका लकड़ी करती है। कहावत प्रसिद्ध है कि "लकड़ी के बल बँदरी नाचे।" रीछ, बन्दर, बँदरिया और बकरी या बकरा इसका सर्वस्व होता है। इसके डमरू की डिम डिम ध्वनि सुनकर आस-पास के लड़कों के झुण्ड दौड़ पड़ते और मदारी मियाँ को घेर लेते हैं। नटखट लड़के तो उसके जानवरों को छेड़ने तक लग जाते हैं। मदारी मियाँ बच्चों को परम प्रिय होता है। वे उसको छोड़कर जाना ही नहीं चाहते।

कंजड़ बड़ी घुमक्कड़ जाति है। यह संसार के सभी देशों में पाई जाती है। यों बाह्य रूप से एशियायी कंजड़ योरप के कंजड़ों से भिन्न प्रतीत होंगे परन्तु यह अन्तर वास्तव में देश, काल और परिस्थिति आदि के कारण है। उनका शारीरिक गठन, भाषा और रीति-रवाज प्रायः एक-सी ही है। उनका अपना संगठन है और अपनी संस्कृति। कंजड़ों की बस्ती घोड़ों, खच्चरों और गधों की पीठ पर ही रहती है। कुछ समय के लिए कहीं ठहर जाते हैं तो चक्कियाँ चलने लगती है और चूल्हे जल जाते हैं—शादी-ब्याह होने लगते हैं। किसी दिन प्रातःकाल फूटे चूल्हों और बिखरे हुए चिथड़ों को छोड़ वहाँ कुछ नहीं रहता। उनकी चोरी, उठाईगीरी, खेत काट ले जाने आदि की कहानियाँ रह जाती हैं। गाँव के बनिये अपनी उधार-वसूली के लिए हाथ मलते रह जाते हैं। कंजड़ों का काफिला रातों रात कई मील दूर निकल जाता है। आजकल के योरपीय विद्वानों का मत है कि ये लोग भारत के मूल निवासी हैं। जर्मनी के ग्रेलमा और इँगलैंड के मार्सडन का भी यही मत है। उनकी भाषा में संस्कृत के बहुत-से शब्द हैं।

कंजड़ की आँख में एक विशिष्ट तेजी होती है। ऐसा लगता है मानो वह कुछ उठा कर भाग जायगा। अतः लोग कंजड़ों को दूर ही रखते हैं और कंजड़ भी सभ्य लोगों के सम्पर्क में सहसा नहीं आते। ये लोग दस्तकार होते हैं और आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। भारत में बहुत-से कंजड़ सिरकी का काम करते हैं, खस की टट्टियाँ बनाते और रस्सियाँ बटते तथा सिकहर बनाते हैं। दस्तकारी के अतिरिक्त मनोरंजन की सामग्री भी

ये लोग बनाते हैं। कहा जाता है कि ताश का आविष्कार कंजड़ों ने ही किया था। इसी प्रकार सितार भी इन्हीं का आविष्कृत माना जाता है। कुछ कंजड़ हस्तरेखाएँ देखकर फलाफल बतलाते हैं। शालहोत्र भी कंजड़ जाति की देन समझी जाती है।

कंजड़ों का संगठन अनुपम है। गिरोह के मुखिया की व्यवस्था सब को मान्य होती है। पुलिस के पहुँचने पर अथवा आपसी झगड़े में मुखिया ही चाल करता है। उसके निर्णय को जातिवाले बिना ननु-नच किये मान लेते हैं। स्त्रियों के लिए निर्णय बड़ी अम्मा करती है। कंजड़ बच्चों से बड़ा प्रेम करते हैं। वे कभी-कभी दूसरों के बच्चों को भी ले जाते हैं जिनको वे बड़े प्रेम से पालते हैं। वे अतिथि-सत्कार को अपना धर्म समझते हैं। कहीं कहीं उनमें एक नियम यह भी है कि पिता अपनी सन्तान को तब तक गोद में नहीं लेता जब तक बच्चा जलधार में स्नान करके पवित्र नहीं हो जाता। जिस डेरे में उसके बच्चे भोजन करते हैं उसमें वह कभी भोजन नहीं करता। कंजड़ स्त्री अपने पति को बहुत मानती है और पति से पिटने पर प्रसन्न होती तथा उसके लिए ललचाती रहती है। अन्य घुमक्कड़ जातियों की भाँति कंजड़ स्त्री-बच्चे भी बड़े परिश्रमी और कष्टसहिष्णु होते हैं।

भूभड़िया लोग लोहे का काम करते हैं और लोहे की गाड़ियों में अपनी गृहस्थी को लादकर एक गाँव से दूसरे गाँव में आते-जाते रहते हैं। साल दो साल बाद उस रास्ते कदाचित् फिर लौटते हैं। कड़ाही, करछुल, कुदाली आदि लोहे की मोटी-मोटी वस्तुएँ बनाना ही इनका काम है। ये लोग अपने को क्षत्रिय कहते हैं। कहा जाता है कि ये महाराणा प्रताप के साथी भील हैं, जिन्होंने पराधीन चित्तौड़ में न जाने का प्रण कर लिया था। घोर परिश्रम ही इनका जीवन है। अपनी ईमानदारी के लिए ये प्रसिद्ध हैं।

सँपेरे भारत के गाँवों और शहरों में, टोकरियों में साँपों को रक्खे और काँवर में लटकाये, बीन बजाते हुए प्रायः देखे जाते हैं। लड़कों की टोली इनके पीछे हो जाती है। जहाँ कहीं मैदान देखा और सेर दो सेर आटे की उसे आशा हुई, बस वहीं पर वह काँवर उतार लेता है और टोकरियाँ खोलने लगता है। सब से पहले वह अपने गलेवाले साँप को जमीन पर रखता है सब

स्त्रियाँ और बच्चे चौकन्ने होकर पीछे हट जाते हैं और उसका काम आरम्भ हो जाता है। गोपद्दी भुजंग, उड़नेवाला, करैत, नागिन सब साँपों को एक के बाद एक डिब्बों, डिबियों, पिटारियों, झोलों में से निकालता चलता है। हर एक का वैचित्र्यपूर्ण वर्णन देता और बीन बजाता जाता है। अन्त में वह अजगर दिखलाता है और उसी की पूजा के लिए हर एक से एक एक चुटकी आटा माँगता है। ये सँपेरे साँप-बिच्छू का ज़हर उतारने की जड़ियाँ भी बेचते हैं और यदि कोई साँप का कहीं निश्चित पता देता है तो उसे पकड़ भी लेते हैं। ये प्रायः टोलियों में रहते हैं। गाँव से मील आध मील दूर किसी पेड़ के नीचे ठहर जाते हैं। डेरा, तम्बू इनके पास कुछ नहीं होता। बाप-बेटे दिन भर साँप दिखाकर भिक्षा माँगते और रात को एकत्र हो जाते हैं। भोजन बना खाकर सो रहते हैं। ये लोग फन काट कर साँप को भी खा जाते हैं।

बाज़ीगर डुगडुगी बजाकर अपना जादू का खेल दिखाता है। कन्धे पर झोला लटकाये वह डुगडुगी बजाता हुआ घूमता रहता है। गाँववालों के लिए यह प्रधान मनोरंजन का साधन है। धूल से रुपये बनाना, रुपयों को मिट्टी में मिला देना, बात की बात में गुठली गाड़कर आम जमा देना, गोले निगलना तथा ताश के विविध खेल दिखलाना इसके हस्तकौशल हैं। बहुधा भीड़ में से किसी को पकड़ कर ये लोग उसको उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। इनका अन्तिम खेल अपने या अपने लड़के जमूड़े के पेट में छुरी भोंकना होता है। बहुत-से लोग विशेषतया स्त्रियाँ उसकी बातों से ही द्रवित हो जाती हैं और उसे रोकती हैं कि इस कारुणिक दृश्य को मत दिखला। बस, यही उसके पैसा माँगने का अवसर होता है। पैसा लेकर वह अपना अन्तिम खेल दिखलाता है और वहाँ से चल देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश की भ्रमणशील जातियों के काम तीन भागों में बाँटे जा सकते हैं—लोगों का मनोरंजन करके भीख माँगना व्यापार, करना तथा छोटा-मोटा हस्त-कौशल का काम करके जीविकोपार्जन कर लेना। इन सभी कामों में बुद्धि और कौशल की आवश्यकता होती है। अतः हमको स्वीकार करना पड़ेगा कि इन लोगों में ये दोनों बातें प्रचुर परिमाण में पाई जाती

हैं। साथ ही साहस और सूझ-बूझ की भी कमी नहीं है। परन्तु भ्रमण-शील होने के कारण उनके इन गुणों का पूरा पूरा उपयोग नहीं हो पाता। बस, जीविकोपार्जन तक ही उनकी क्षमता सीमित रह जाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है, कि देश की उपार्जन-शक्ति बढ़ाने के लिए इनको बसाया जाय और किसी उपयोगी उद्योग की शिक्षा दी जाय। इसी में इनका और देश का—दोनों का—भला है।

इन घुमक्कड़ जातियों को स्थायी रूप से बसाने और शिक्षा देने की ओर भारतीय नेताओं की दृष्टि बहुत दिनों से है। देश की पराधीनता के कारण इस सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं हो सका है। यह काम बहुत सरल है भी नहीं। सबसे बड़ी कठिनाई इन लोगों की परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ने की है। ये हम लोगों की सभी बातों को शंका की दृष्टि से देखते हैं और अपना कार्य छोड़ने में भारी आशंका करके डरते भी हैं। आशा है, कालान्तर में वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के बाद हमारी सरकार का ध्यान इनकी ओर जायगा।

कोहनूर की आत्मकथा

रूपरेखा :—

१—प्रस्तावना—एडवर्ड अष्टम से कोहनूर का वार्तालाप
२—जन्म—खानि में
३—मुगल दरबार में
४—नादिरशाह के पास
५—रणजीतसिंह के हाथ में
६—इँगलैंड की सैर

भारत-सम्राट् एडवर्ड अष्टम एक दिन राजसी ठाट-बाट में मुकुट धारण किये हुए राजोद्यान में टहल रहे थे। श्रीमती सिम्पसन की प्रतिमा उनके मस्तिष्क में सञ्चार कर रही थी। प्रधान मन्त्री ने अन्तिम चेतावनी दे दी थी। उनको साम्राज्य के आधिपत्य और प्रेयसी के कृपाकटाक्ष में से एक का निर्वाचन करना था। हृदय एक ओर खींच रहा था और बुद्धि की प्रेरणा दूसरी ओर ले जा रही थी। सहसा कानों में ध्वनि आई—'सम्राट्, जीवन में प्रेम ही सत्य है। मैंने अपने इस छोटे-से जीवन में राज्यों का निर्माण, ध्वंस, उत्थान और पतन अनेक बार देखा है। जो आज चक्रवर्ती सम्राट् है वही कल दीन-हीन हो जाता है। जिसके पास आज हीरे-जवाहरात के ढेर हैं, वह दूसरे दिन कुछ पैसों के लिए परमुखापेक्षी हो जाता है; परन्तु प्रेम का साम्राज्य अटल है, तभी तो उसको भगवान् का रूप कहा है—

हरी प्रेम को रूप है त्यों हरि प्रेम-स्वरूप।
एक होय द्वै यों लसत ज्यों सूरज और धूप॥

इसलिए आप दुविधा छोड़कर श्रीमती सिम्पसन को अङ्गीकार कीजिए।'

सम्राट् ने सिर उठाया। चारों ओर देखा। कोई भी दिखाई न दिया। वे आश्चर्य में पड़ गये। पूछा—कौन? उत्तर मिला—आपके मुकुट में जड़ा हुआ मैं कोहनूर हूँ। मुझे पूर्व और पश्चिम सभी स्थानों का अनुभव है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई-सभी प्रकार के राजघराने मैंने देखे हैं। अतः

आप मेरी बात मानिए। आपके अन्तःक्षोभ से ही द्रवित होकर मैंने कुछ कह दिया। आश्चर्य न कीजिए। मुझे देश-देश की भाषाओं का ज्ञान है।

सम्राट् अपनी चिन्ता भूल गये और बड़े कुतूहल के साथ कोहनूर से अपना अनुभव सुनाने का आग्रह करने लगे। उन्होंने पूछा—तुम कहाँ उत्पन्न हुए, कहाँ रहे, किन-किन देशों और राज्यों में तुमने विचरण किया? सविस्तर वर्णन करो। मैं तुम्हारी बात सुनने के लिए अधीर हो रहा हूँ। अब तक मैंने किसी अमानुष से मनुष्य की वाणी नहीं सुनी।

कोहनूर ने प्रारम्भ किया—

मैं एक तुच्छ पत्थर का टुकड़ा हूँ। फिर भी लोगों की दृष्टि में मैं बहुमूल्य माना जाता हूँ। मेरे इस तुच्छ जीवन पर होकर न जाने कितने छोटे-बड़े आँधी-तूफान चले गये हैं। इतना परिवर्त्तन शायद ही किसी के जीवन में हुआ हो। मेरा वय लम्बा हो चला है। अनेक राजाओं, राज्यों एवं कालों को पार कर अब मैं इस अवस्था को पहुँचा हूँ। आज मैं संसार के एक महान् राजा के मुकुट की शोभा बढ़ा रहा हूँ फिर भी वह पुरानी बात समाप्त हो गई है।

हाँ, तो मेरी जन्मकहानी सुनिए। मेरा जन्म गोलकुण्डा की एक कन्दरा में हुआ था। किस प्रकार मैं गोलकुण्डा के एक व्यवसायी के हाथ में पहुँच गया—मुझे अब ठीक-ठीक याद नहीं है। हाँ, इतना अवश्य याद है कि उस व्यवसायी के घर में बहुत दिनों तक नहीं रहा। धीरे-धीरे मेरी ख़बर भारत-सम्राट् शाहजहाँ के कानों तक पहुँची। मेरे मालिक ने उस समय अपने मन मे यह विचार किया कि सम्राट् की दृष्टि जब इसके ऊपर पड़ चुकी है तब, चाहे जिस प्रकार हो, वे इसे अपने पास बुला लेंगे ही। इसलिए उसने पहले ही सोचा कि यदि उपहार के रूप में यह सम्राट् के पास पहुँच जाय तो मान भी रह जायगा और साथ ही मेरी जान भी बच जायगी। ऐसा निश्चय कर, मेरे मालिक एक दिन मुझे लेकर राजसभा में उपस्थित हुए। शाहजहाँ के दरबार की शान-शौकत देखकर सचमुच मेरे मन में घमंड हो गया। मन ही मन सोचा, मेरे रहने योग्य स्थान यही है। आप मुझ पर शायद हँसेंगे। सोचेंगे, एक पत्थर के टुकड़े की इतनी उड़ान हाँ, तो सम्राट् शाहजहाँ को

मुझे पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मेरे मालिक—उस व्यवसायी—को तो हाथ लगा रुपयों का एक थैला, और मै एकबारगी जा पहुँचा भारत-सम्राट् के माथे पर। इसके बाद से ही मेरे जीवन का वह अध्याय प्रारम्भ हुआ जिसमें मैं एक राजा से दूसरे राजा के मस्तक पर चक्कर लगाता रहा। मैं जिस दिन सम्राट् शाहजहाँ का शृङ्गार बना था उस दिन से लेकर आज तक राजमस्तक के नीचे नहीं उतरा। हाँ, एक मस्तक से दूसरे मस्तक का परिवर्तन अनेक बार करना पड़ा है।

शाहजहाँ जिस समय मुझे राजमुकुट में धारण करके अपने दरबार में मयूर-सिंहासन पर बैठते उस समय सचमुच मैं अपने को परम सौभाग्यशाली समझता। लेकिन 'सब दिन रहत न एक समान।' अंत में शाहजहाँ का भी भाग्य-सूर्य्य अस्त हुआ और उसके साथ-साथ मेरे भाग्य में भी परिवर्तन हुआ। औरङ्गज़ेब की दृष्टि में मैंने किसी दिन भी विशेष सम्मान नहीं पाया। शाहजहाँ का लड़का इतना अरसिक हो सकता है, इसे मैंने ध्यान में भी नहीं सोचा था। ख़ैर, औरङ्गज़ेब के बाद मैंने अपने पूर्व गौरव को बहुत कुछ प्राप्त कर लिया।

इसके बाद बहादुरशाह, मुहम्मदशाह, अहमदशाह आदि कितने ही बादशाह एक-एक करके आये और चले गये। इनमें एक भी बहुत दिनों तक राज्य नहीं कर सका। इसी समय आ उपस्थित हुए मुहम्मदशाह द्वितीय और उनके साथ-साथ मेरे भाग्य के आकाश में घने काले बादल दिखलाई पड़े। चारों ओर शोर होने लगा—"नादिरशाह आ रहा है! नादिरशाह आ रहा है!" मैं भी कुछ कुछ डर गया। यह नादिरशाह कौन है और इससे डरने का आखिर कारण क्या है? सब लोग दिल्ली छोड़-छोड़कर भागने लगे।

सुना "नादिर एक भयानक सिपाही है और साथ ही बहुत कठोर। जहाँ उसके चरण पहुँचते हैं वहाँ गीदड़ और गीध दिखाई पड़ने लगते हैं।" एक दिन यह नादिरशाह आ ही पहुँचा और मुझे भी इस अति भयंकर व्यक्ति को देखने का अवसर मिला। मुहम्मदशाह ने नादिरशाह की अधीनता स्वीकार कर ली उसने न जाने किस कुघड़ी में मुझे प्राप्त किया था कि अब उसे

सदा के लिए मुझसे हाथ धोना पड़ा और मुझे भी अनिश्चित समय के लिए अपनी जन्म-भूमि से बिदा ग्रहण करनी पड़ी। मुहम्मदशाह के मस्तक पर मुझे देखते ही नादिरशाह के मुँह में पानी आने लगा। उसी क्षण मन ही मन उसने एक जाल रचा। बिदा होते समय वह मुहम्मदशाह से बोला—आओ अपने इस मिलने को सदा स्मरण रखने के लिए हम दोनों मुकुट को बदल लें। मुहम्मदशाह को मानना ही पड़ा। यह क्या उसके लिए कम गौरव की बात थी? इतने बड़े विजयी वीर के मुकुट का अपने मस्तक पर धारण करना! नादिरशाह के मस्तक पर स्थान पाकर देश-विदेशों में मेरी जीवन-यात्रा हुई।

इसके बाद मुझको लेकर मार-काट, खून-खच्चड़ प्रारम्भ हुआ। यह देखकर मुझे बुरा नहीं लगता था। एक साधारण पत्थर के टुकड़े के लिए मनुष्य की जान को लेकर इस प्रकार खिलवाड़ हो सकता है! हाँ, इतना अवश्य है कि उस समय के ईरान, अफगानिस्तान और आस-पास के राज्यों में विद्रोह, युद्ध तथा हत्याएँ नित्य की घटनाएँ थीं। दुर्बल के ऊपर सबल का अत्याचार, यही उस समय का नियम था। नादिर मुझे साथ लेकर विजय-गौरव से दीप्त स्वदेश की ओर चल पड़ा। मार्ग में ऐसा कोई नहीं था जो बाधा देता। इसलिए हम लोग बिना किसी विघ्न-बाधा के ईरान आ पहुँचे। किन्तु नादिर को फिर अपनी राजधानी में प्रवेश करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। मुझे भी ईरान की राजधानी देखने का अवसर नहीं मिला।

उसी राज्य के एक विस्तृत मैदान में हम लोगों का खेमा गाड़ा गया। बड़े-छोटे सभी आनन्द की सरिता में डुबकियाँ लगा रहे थे। वह शून्य प्रान्त भी एक रात के लिए विराट् राजप्रासाद जैसा बन गया था। नादिर के खेमे में भी सुरा एवं संगीत के साथ-साथ विजय की प्रसन्नता की धूम थी। नादिर के गृहशत्रु इसी अवसर की ताक लगाये बैठे थे। सहसा खेमे के अन्दर का प्रकाश बुझ गया और साथ-साथ प्रारम्भ हुआ भीषण हत्याकाण्ड। नर्त्तकियों का संगीत विलाप में बदल गया। पहले तो मैं समझ ही नहीं सका कि बात क्या है। किन्तु कुछ क्षणों के बाद ही यह समझने में देर नहीं लगी कि नादिर के इस लोक की विजययात्रा अब समाप्त हो चली

अंधकार में किसी के उष्ण कर ने मुझे छुआ, मानो कोई नादिर को उसके बहुमूल्य जीवन और उसके जीवन की सबसे मूल्यवान् वस्तु (कोहनूर) से सदा के लिए मुक्त कर रहा है और मेरा बोझ अपने कन्धे पर ले रहा है।

सुबह होने पर पता चला, मेरा बोझ ढोनेवाला, मेरा मालिक मेरे लिए कोई अपरिचित व्यक्ति नहीं है। वह नादिर का एक काले रंग का घोड़ा और हम दोनों के मालिक, ही एक सेनापति अहमदशाह अब्दाली था। उस समय तक हम लोग—नादिर के खेमे से बहुत दूर आ पड़े थे।

इसके बाद एक लम्बे समय तक अफ़गानिस्तान में ही मैं अड्डा जमाये रहा। बीच-बीच में अपने मालिक के साथ मैं अपनी जन्मभूमि भी आ जाया करता था। इस प्रकार अनेक उत्थान-पतन के मध्य से होकर मैं देश से निकाले हुए शाहशुज़ा के हाथ आ पड़ा। मैं पहले ही इस बात को ताड़ गया था कि शाहशुजा में इतनी शक्ति नहीं है कि वह चिरकाल तक मुझे अपने पास रख सके। आखिर बात वही हुई। पंजाब-केसरी रणजीतसिंह की दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। खोये हुए राज्य को फिर से प्राप्त करने में सहायता पहुँचाने के बदले रणजीतसिंह ने शाहशुजा से मेरे लिए माँग पेश की, आपत्ति करने की शक्ति या सामर्थ्य तो शाहशुजा में थी नहीं।

इच्छा न रहते हुए भी उसे मेरी माया का त्याग करना पड़ा। इसके फलस्वरूप मैं रणजीत के मस्तक पर आ बैठा। मेरी प्रसन्नता का क्या कहना? बहुत दिनों के बाद स्वदेश में लौट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु, रणजीत की मृत्यु के बाद, सिक्खों का पतन शीघ्रता से आरम्भ हुआ। वे शक्तिशाली अँगरेजों के सामने बहुत दिनों तक नहीं टिक सके। रणजीत सिंह गये, खड्गसिंह गये, नौनिहालसिंह गये, शेरसिंह भी गये, अंत में दिलीपसिंह के मस्तक पर मैंने आसन जमाया। परन्तु मेरा भार वहन करने की क्षमता उसमें न थी। द्वितीय सिख-युद्ध हुआ। पंजाब प्रदेश अँगरेज़ों के अधिकार में गया। लार्ड डलहौज़ी की आँख मेरी ओर गई और सात समुद्र पार कर मुझे यहाँ आना पड़ा। यहाँ आकर मेरी जो दुर्गति हुई वह आपको विदित ही है। मेरे दो भाग हुए। मैं अद्वैत से द्वैत हुआ। मेरे भाग सम्राट् और सम्राज्ञी के मुकुट को सुशोभित करने लगे अपने इस

विस्तृत अनुभव के ही आधार पर मैं कहता हूँ कि आप अन्तःक्षोभ को दूर कीजिए और प्रेम को ही सत्य समझिए।

कोहनूर की कथा का सम्राट् के मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने उसी समय श्रीमती सिम्पसन को वरण करने का निश्चय कर लिया और उस विशाल साम्राज्य को ठुकरा दिया, जिसमें कभी सूर्य ही नहीं अस्त होता था। ऐसे कितने लोग हैं, जो एडवर्ड अष्टम के विवाह के इस रहस्य को जानते हैं!

मेले का वर्णन

रूप-रेखा—

१—सोनपुर कहाँ है, वहाँ क्यों मेला लगता है।
२—हाथियों की कथा।
३—मेले की वस्तुएँ।
४—पशु और चिड़ियाँ
५—मेला, विहार सरकार

(सोनपुर का मेला)

सोनपुर विहार प्रान्त के सारन ज़िले में है। यहाँ कार्त्तिक में महीने भर का जो मेला लगता है उसको 'छत्तर' या 'हरिहरछेत्र' का मेला कहते हैं। सुना है, इतना बड़ा मेला भारत में तो क्या एशियाखण्ड में भी नहीं लगता। लोग यहाँ पर गण्डक नदी में स्नान करके, माही और गण्डक के संगम पर बने हुए, मन्दिर में हरिहरनाथ महादेव को जल चढ़ाने का बड़ा माहात्म्य मानते है। मन्दिर के बीच में शिवलिङ्ग है। पास ही विष्णु भगवान् का पुराना मन्दिर है जिसमें मूर्त्ति के चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और कमल है। लोग कहते हैं कि रामचन्द्रजी ने मिथिला में धनुष तोड़ने के बाद, सीताजी के साथ विवाह करने के पहले, गण्डक में नहा कर हरिहरनाथ को स्थापित किया था।

दूसरे लोगों का कहना है कि बहुत पुराने ज़माने में यहाँ, त्रिकूट पर्वत के पास, बड़ी भारी झील थी। उसके चारों ओर घना जंगल था। उसमें एक मस्त हाथी अपने झुण्ड के साथ रहता था। वास्तव में यह पांड्य देश का राजा इन्द्रद्युम्न था जो शाप लगने से हाथी हो गया था। झील में था बड़ा भारी घड़ियाल। उसके साथ भी छोटे-बड़े बहुत-से घड़ियाल थे। वह हूहू नाम का गन्धर्व था जो शाप लगने से घड़ियाल बन गया था।

एक दिन हाथी, अपने दल-बल के साथ, झील में पानी पीने आया तो घड़ियाल ने उसका पाँव पकड़ लिया। अब क्या था, दोनों में लड़ाई ठन गई। इस लड़ाई में जङ्गल के तमाम हाथी एक ओर थे और दूसरी तरफ थे सभी घड़ियाल। कभी हाथी घड़ियालों को धरती पर खींच लाते और कभी घड़ियाल हाथियों को पानी में घसीट ले जाते। यह लड़ाई सहस्रों वर्ष तक होती रही। अन्त में हाथियों को हारने की शंका हुई, तो झुण्ड के मालिक गजराज ने दूसरा उपाय न देख भगवान् की शरण ली। तब भगवान् ने शरणागत की रक्षा करने को अपने चक्र से घड़ियालों के मुखिया को काट डाला। यों गजराज और घड़ियाल दोनों को ही शाप से छुड़ा दिया। उसी समय से भगवान् हरिहरनाथ के रूप में वहाँ पर विराज रहे हैं। अब न तो वह त्रिकूट पर्वत है और न वह झील ही। हाँ, उस घटना की याद दिलाने के लिए वह पवित्र तीर्थ अवश्य है।

जहाँ पर हरिहर क्षेत्र का मेला लगता है उसके पास ही अवध-तिरहुत (ओ० टी०) रेलवे का सोनपुर स्टेशन है। स्टेशन से लगभग एक मील पूर्व गण्डक के पश्चिमी तट पर, रेल के पुल के पास, मेला लगता है। यह रेल का पुल २१७६ फुट लम्बा है। इसको लार्ड डफरिन ने सन् १८८७ में खोला था। पुल के पास, रेल लाइन के उत्तर-दक्षिण में, लगभग एक मील और पूर्व-पश्चिम में भी इतनी ही जगह में मेला लगता है। गण्डक की रेती में भी दूर तक मेला रहता है।

मेले की जगह, बीच बीच में, आम के बाग हैं। मेले में पूर्व-पश्चिम ओर तीन सड़कें हैं और इतनी ही उत्तर-दक्षिण में। सड़कें चौड़ी, सीधी और समान हैं। इन सड़कों के दोनों ओर दुकानें लगती हैं। अन्य स्थानों और बगीचों में हाथी, घोड़े, गाय, बैल और भैंस आदि चौपायों तथा दूसरी चीजों का बाजार लगता है। धोती-जोड़े, कम्बल, शतरंजी, बर्तन, खिलौने, बाँस और बेंत की चीजें, बाजे, फल-फूल और तरकारियों की दुकानें लगती हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए सराय, होटल, थियेटर और सिनेमा इत्यादि का भी प्रबन्ध रहता है। पहले मेले में चीन, जापान, अमरीका, फ्रान्स और जर्मनी इत्यादि से भी बड़ी बड़ी दुकानें आती थीं। इधर तो

महायुद्ध और फिर अन्न की कमी के कारण सरकार मेला ही नहीं लगने देती। इससे देश की बहुत हानि हुई है।

इस मेले की विशेष वस्तु है चौपायों और चिड़ियों का बाज़ार। संसार में यह मेला इन्हीं के लिए प्रसिद्ध है। हाथियों का बाजार देखकर मनुष्य भौंचक हो जाता है। छोटे और बड़े हाथी, पैर में जंजीर लगाकर, कतारों में बाँधे जाते हैं। हाथियों का ऐसा जमघट संसार में और कहीं देखने को नहीं मिल सकता। हाथियों के बच्चे बड़े अच्छे लगते हैं। दो ढाई हाथ के खम्भे की तरह छोटे-छोटे पैर, छोटी-सी सुडौल सूँड़ और गोल-मटोल पेट देखते ही बनता है। बदन पर तेल लगा रहता है। कोई पास पहुँच जाता है तो उसका हाथ-पैर, धोती या कपड़े का छोर पकड़कर खींचता है गोया उसके लिए खिलौना है। बड़े हाथी का क्या कहना। उन्हें छोटा-मोटा पहाड़ समझिए। दो-दो, ढाई-ढाई हाथ लम्बे उनके दाँत होते है, जिनमें से किसी-किसी के दाँतों के सिरे चाँदी या पीतल से मढ़े रहते हैं।

हाथियों का गण्डक में नहाना एक देखने की चीज़ है। कोई पानी में खड़ा है तो कोई बैठा है, कोई करवट से बैठा है, कोई सूँड़ ऊपर निकाले पानी में डूबा हुआ है और कोई सूँड़ में पानी भर कर फुहारा छोड़ रहा है। नहलाने के बाद हाथी का शृंगार किया जाता है। उसके माथे से लेकर सूँड़ तक पीली, लाल और सफ़ेद मिट्टी से चित्रकारी कर दी जाती है, जो बड़ी सुहावनी लगती है। किसी की पीठ पर रेशमी, किसी की पीठ पर रंग-बिरंगी कामदार और किसी की पीठ पर दूसरे ढंग की झूल रहती है। मेले में हिमालय, आसाम और मध्य भारत के जङ्गलों के हाथी बिक्री के लिए लाये जाते हैं। अब रुपये में चार आने भी हाथी नहीं आते। गाहक भी कम मिलते हैं।

कतारों में घोड़े बँधे रहते हैं। एक-एक कतार में अस्सी-पचहत्तर तक घोड़े रहते हैं—सफेद, बादामी, काले, चितकबरे तरह-तरह के रंगों के। देश के भिन्न-भिन्न स्थानों के घोड़े यहाँ मिलेंगे—टट्टू से लेकर ऊँची रास तक के। इनको भी सजाया जाता है। पहले अरब और आस्ट्रेलिया के भी घोड़े आते थे

गौवों और भैंसों का भी बड़ा बाज़ार लगता था। ऊँचे-पूरे मस्त बैल देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता था। परन्तु इधर युद्ध के पश्चात् अच्छी नस्ल के जानवर दुर्लभ हो गये हैं। भावलपुरी और मुलतानी गौवों की कमी हो गई है जिनको देखकर बरबस मुँह से वाह-वाह निकलती थी।

चिड़ियों का बाजार कैसा होता है, यह बिना देखे नहीं मालूम हो सकता। विधाता ने सारी कारीगरी चिड़ियाँ बनाने में ही दिखाई है। मेले का यह भाग सबसे निराला होता है। इनके रंगों के विषय में क्या कहा जाय। देश-देश की चिड़ियाँ इन बाजारों में मिलती हैं। हीरामन और लालमोहन तोते, जावा का प्यारो, लाल, हरबोला, रोबिन, फिलश्च, चीन की बुलबुल, लाहोरी तीतर, आसाम और सिंगापुर की मैना, चीन की कर्नेली, गुमरा, गोरखपुरी बगुई, आसाम की मदनगौर, श्यामा और पपीहा इत्यादि को देखकर आप को बड़ा अचम्भा होगा। कोई चिड़ियाँ पिंजरे में फुदकती मिलेंगी, कोई कलाबाजी करती, कोई गाती और कोई सीटी बजाती। इस बाजार से दूसरी जगह जाने को जी नहीं चाहता।

ऊँट, हिरन, कुत्ते, बन्दर, लंगूर और रीछ इत्यादि भी बिकने आते हैं।

बिहार-सरकार ने मेले की उन्नति के लिए बहुत खर्च किया था। चौपायों और चिड़ियों के लिए तथा मनुष्यों के लिए अस्पताल खुलवाये हैं। मेले में सफ़ाई और पानी का भी प्रबन्ध रहता था। छूत की बीमारियों की रोकथाम के लिए भी प्रबन्ध रहता था। ज़िले का हाकिम और परगना-अफ़सर मेले में रहकर प्रबन्ध करते थे। देश-देशान्तर के राजा-रईस और ज़मींदार या तो तम्बुओं में ठहरते थे या फूस के बँगलों में।

कराची की यात्रा

१—यात्रा का कारण तथा मार्ग, ३—समुद्र-दर्शन,
२—नगर-प्रवेश, ४—भवन तथा सड़कें,
५—मंगोपीर आदि अन्य स्थान,

मेरे पिताजी हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में सम्मिलित होने को कराची के लिए तैयार हो रहे थे। उन दिनों मेरे कालिज में भी बड़े दिन की छुट्टियाँ थीं। इसलिए मैंने बाबूजी से यह प्रस्ताव किया कि मुझे भी साथ लेते चलिए। वे तो लम्बी यात्रा और मार्ग में ठण्ड के भय से घबरा रहे थे परन्तु मुझे तो समुद्र देखने की लालसा के सम्मुख कोई भी कठिनाई बड़ी न मालूम पड़ती थी। उन्होंने कहा कि मुन्नू, रास्ते मे पूरे ६० घण्टे लगते हैं। ६० घण्टे ट्रेन में बैठना हँसी-खेल नहीं है। खाने-पीने का कष्ट तो है ही, गाड़ियों में भी इतनी भीड़ होती है कि लेटने और आराम से बैठने की तो क्या, भीतर पहुँचने और खड़े हो जाने को स्थान मिल जाय तो बड़ी बात है। परन्तु अन्त में मेरी बालहठ को वे टाल न सके। उन्होंने मुझसे यह वचन अवश्य ले लिया कि रास्ते में प्लेट फार्म की कोई चीज खाने न पाओगे। मैं प्रसन्नता से सहमत हो गया। माताजी ने रास्ते के लिए कुछ पाथेय बनाकर दे दिया और मेवा भी रख दी। इसी के सहारे हम लोग रास्ते में निर्वाह करते हुए कराची पहुँच गये।

कराची नगर में शारदा-मन्दिर एक प्रसिद्ध स्थान है। यह एक पाठशाला है। हम इसी पाठशाला के निकट केरिया हाईस्कूल में ठहरे थे। सम्मेलन की स्वागत-समिति की ओर से अतिथियों के लिए बहुत अच्छा प्रबन्ध था। कई दिन के थके हुए तो थे ही, वहाँ पहुँचते ही हम आराम से सो गये।

दूसरे दिन प्रातःकाल ८ बजे मेरी आँख खुली। जाड़ा तो था, परन्तु ठिठुरन नहीं थी। इसलिए नींद की सुखद गोद त्याग कर हमने हाथ-मुँह धोया, स्नान किया और कपड़े पहन कर समुद्र देखने को बन्दर रोड की ओर चल पड़े। कराची की यह मुख्य सड़क है। यह सड़क सीधी समुद्र की ओर जाती है। इस पर ट्राम गाड़ियाँ चलती हैं। समुद्र की ओर जानेवाली एक ट्राम गाड़ी में हम भी बैठ गये और चार आने देकर केमारी पर उतर गये।

केमारी समुद्र-तट पर है। यहाँ जहाजों की मरम्मत आदि होती है। यह दर्शनीय स्थान है। सन्ध्या के समय इसका दृश्य बड़ा मनोरम हो जाता है। यहाँ से मनोरा द्वीप साफ दिखलाई देता है। मनोरा देखने को हम लोगों ने एक नाव की। नाववाला दो आने में मनोरा पहुँचा देता है। समुद्र की यह छोटी सी यात्रा मेरे जीवन की पहली समुद्र-यात्रा थी। इस यात्रा से मुझे बहुत आनन्द मिला।

मनोरा द्वीप कराची के पास एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ जलसेना विभाग का दफ्तर है। यह बहुत सुन्दर बना हुआ है। द्वीप के दूसरी ओर समुद्र की विशालता देखने योग्य है। पास ही एक सुन्दर मंदिर है, जहाँ दर्शकों के बैठने का प्रबन्ध है। वहाँ से मनोरा का प्रकाश-गृह स्पष्ट दिखलाई देता है। प्रकाश-गृह रात में जहाजों को मार्ग दिखाता है। इसका प्रकाश बड़ी दूर तक जाता है। ट्रेन के लिए जिस प्रकार सिगनल आवश्यक है, उसी प्रकार जहाजों के लिए प्रकाश-गृह होते हैं। यहाँ छोटे-छोटे प्रकाश-गृह भी हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ समुद्री बाँध भी देखने योग्य हैं। मनोरा के पास समुद्र उथला है। ऐसी दशा में जहाजों के लिए समुद्री बाँध बड़ा सुविधा-जनक होता है।

कराची में दूसरा समुद्री दृश्य क्लिफ्टन में देखने को मिलता है। यह स्थान प्रधान नगर से दूर कराची कैण्ट के पास है। सदर रोड से होकर यहाँ जाना पड़ता है। ट्राम गाड़ियाँ केवल सदर रोड तक जाती हैं, आगे नहीं। इसलिए हम यहाँ विक्टोरिया से गये। घोड़ा गाड़ी को यहाँ विक्टोरिया कहते हैं। वैसी गाड़ियाँ हमारे प्रान्त के रईसों के यहाँ होती हैं। इन गाड़ियों के सिवा

कराची में बैल, ऊँट और खोता (गधा) गाड़ियाँ भी देखने को मिलती है। जिस प्रकार हम ठेलों पर सामान ढोते हैं उसी प्रकार वहाँ ऊँट तथा खोता गाड़ियों पर सामान ढोया जाता है। वहाँ घोड़ों आदि के खाने के लिए एक प्रकार की नई घास होती है जिसे लूसेन कहते हैं। यह अँगरेज़ी घास है और मेथी के पौदे से मिलती-जुलती है। क्लिफ्टन जाते समय मार्ग में हमने ये सब चीज़ें देखी थीं।

क्लिफ्टन बड़ा रमणीक समुद्र-तट है। केमारी की तरह यहाँ के वायुमण्डल में कोलाहल नहीं है। खुला हुआ समुद्रतट, साफ निर्मल वायु, इधर-उधर चौड़ा मैदान, जिधर देखिए उधर ही आँखें जम जाती हैं। प्रकृति-सौन्दर्य यहाँ देखने योग्य है। समुद्रतट के पास ही एक सुन्दर बाग है। यह बाग रूपचन्द बिलाराम के नाम से प्रसिद्ध है। समुद्र की रेती पर जाने के लिए बाग के पास ही सीढ़ियाँ बनी हैं। इन सीढ़ियों से उतरते ही रेती पर कुछ दूकानें मिलती हैं जहाँ शार्क मछली के बड़े-बड़े दाँत, कई प्रकार के शंख, घोंघे, सीपी की प्राकृतिक तश्तरियाँ आदि बड़ी सस्ती बिकती हैं। इन दूकानों को देखने से समुद्र के छोटे-छोटे जानवरों के सम्बन्ध में पर्याप्त ज्ञान हो जाता है। मैंने भी इन दूकानों को ध्यान से देखा और फिर समुद्र की ओर गया।

यहाँ समुद्र बहुत उथला है। नहाने के लिए यह स्थान बड़े सुभीते का है। हम लोगों ने समुद्र में यहीं स्नान किया। समुद्र की उठती हुई ऊँची ऊँची लहरों के बीच स्नान करने में बड़ा आनन्द मिलता है। पहले तो मुझे डर लगा, परन्तु थोड़ी देर बाद तो मैं समुद्र में तीन-चार फर्लांग की दूरी पर निकल गया। जब समुद्र की ऊँची ऊँची लहरें आती थीं तब मैं थोड़ा उचक जाता था या सिर नीचा करके उनसे टक्कर लेता था। पल भर में लहरें सिर से ऊपर निकल जाती थीं।

क्लिफ्टन और मनोरा के अतिरिक्त कराची के भवन और बगीचे भी दर्शनीय हैं। वहाँ के म्युनिसिपल आफिस का भवन बड़ा ही सुन्दर है। बन्दर रोड से इसका दृश्य बड़ा सुहावना लगता है। रेलवे स्टेशन के पास काटन एक्सचेंज का भवन भी सुन्दर है इसके अतिरिक्त न्यायालय,

व्यवस्थापिका-सभा-भवन, विक्टोरिया अजायबघर, फ्रीयर हाल, सिन्ध क्लब आदि दर्शनीय हैं। कराची में गार्डेन (वाटिकाएँ) और पार्क बहुत हैं। इन वाटिकाओं में गाँधी गार्डेन, जिओलाँजिकल गार्डेन तथा बर्न्स गार्डेन अधिक प्रसिद्ध हैं।

कराची की सड़कें बहुत चौड़ी हैं। बन्दर रोड, सदर रोड, जमशेद रोड, फ्रीयर रोड आदि प्रसिद्ध सड़कें हैं एलफिंस्टन स्ट्रीट पर सर्राफे और जौहरियों की तथा सदर रोड पर रेडियो की बड़ी-बड़ी दूकानें हैं। होटल और जलपान-गृह तो प्रत्येक सड़क पर मिलते हैं। यहाँ होटलों में बड़ा शोर मचता रहता है। जलपान-गृह का प्रत्येक नौकर आदि से अन्त तक प्रत्येक वस्तु का नाम चिल्ला-चिल्ला कर कहता है। भोजनालयों में भोजन अच्छा नहीं मिलता। पूड़ी के साथ तरकारी के स्थान पर खाने को दाल मिलती है। इस नगर का प्रसिद्ध हलवाई चन्दू है। उसकी दूकानें प्रत्येक मुख्य सड़क पर हैं और खूब चलती हैं। पता नहीं, अब पाकिस्तान के प्रताप से उस बेचारे पर क्या बीती होगी।

व्यापार की दृष्टि से कराची का महत्त्व बम्बई अथवा कलकत्ता से कम है। वहाँ का कोई अपना रोज़गार नहीं है। मिलें तो वहाँ हैं ही नहीं। इस-लिए वहाँ बड़ी स्वच्छता रहती है। गन्दगी कहीं देखने में नहीं आती। जोधपुर तथा एन० डबल्यू० रेलवे लाइन के किनारे रुई के कुछ कारखाने हैं। इन कारखानों में सिन्ध प्रान्त के अन्य भागों से रुई आती है और मशीन से जमा करके कराची भेज दी जाती है। पंजाब का गेहूँ भी वहाँ भेजा जाता है। योरप का माल वहाँ अधिक आता है। कराची के ख्वाजा बड़े व्यापारी और अमीर हैं। ये लोग कराची के जिस मुहल्ले में रहते है उसे खोजा लेन कहते हैं। इनके रहने की पहचान इनके सुन्दर झंडों से हो जाती है।

कराची नगर से थोड़ी दूर मंगो पीर भी एक दर्शनीय स्थान है। वहाँ गर्म पानी के सोते हैं जिनमें गंधक मिला रहता है। इस स्थान के सम्बन्ध मे लोगों का कहना है कि यहाँ तेरहवीं शताब्दी में एक पीर आये थे जिनका नाम मंगो पीर था। उस समय यहाँ एक मठ था इस मठ का स्वामी मदा

अत्याचारी था। मंगो पीर के शाप से वह तथा उसके परिवार के सभी लोग घड़ियाल हो गये। यहाँ घड़ियाल बहुत हैं। ये बाहर हवा में लेटे रहते हैं।

कराची के सिवा हैदराबाद भी सिन्ध का एक सुन्दर नगर है। स्टेशन के पास ही एक किला है। यहाँ की भूमि समतल नहीं है। सड़कें बहुत ऊँची-नीची हैं और उन पर बड़े-बड़े फाटक बने हैं। हैदराबाद के घरों की छतों पर ऊँचे-ऊँचे हवादान (मंगी) बने रहते हैं। कराची में ऐसे हवादान कम हैं। लोगों का कहना है कि गर्मी के दिनों में घर के भीतर इन हवादानों से खूब हवा आती रहती है। सिन्ध प्रान्त की यह एक विशेष पहचान है।

सिन्ध मरुस्थली प्रान्त है। जोधपुर रेलवे लाइन के लूनी जंकशन से कराची तक की यात्रा में इतनी धूल उड़ती है कि ट्रेन की खिड़कियाँ खोल कर बैठना कठिन हो जाता है। यहाँ की भूमि अधिक उपजाऊ नहीं है। वर्षा कम होने के कारण यहाँ खेती कम होती है। इस कमी को दूर करने के लिए सक्खर नामक स्थान पर सिन्ध नदी का पानी रोककर नहरें निकाली गई हैं। इन नहरों से अब सिंचाई होने लगी है। इससे यह आशा होती है कि निकट भविष्य में सिन्ध-प्रान्त का अधिक भाग उपजाऊ हो जायगा। इस बाँध के बनाने में भारत का बहुत व्यय किया गया था। उसका लाभ पाकिस्तानी उठा रहे हैं।

पहले सिन्ध प्रान्त की राजधानी कराची में थी। अब वहाँ पाकिस्तान की राजधानी हो गई है। पाकिस्तानी गवर्नर-जनरल जिन्ना की कब्र वहीं बनाई गई है।